प्रकाशकः बौद्ध संघ प्रकाशक

बहुजनों के महानायक एवं समाज सुधारक

लेखकः यशपाल सिंह कोठारी

बहुजनों के महानायक
एवं
समाज सुधारक

लेखक
यशपाल सिंह कोठारी
(एम.ए, बी.एड, एल.एल.बी)
प्रधानाचार्य (सेवानिवृत्त)
दिल्ली प्रशासन, दिल्ली

बौद्ध संघ प्रकाशक
ए–3/58, सैक्टर–15, रोहिणी, दिल्ली–110089

प्रकाशक

बौद्ध संघ प्रकाशक
ए–3/58, सैक्टर–15, रोहिणी, दिल्ली–110089
मो. 8368095862

पुस्तक के सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

प्रथम संस्करण : जुलाई 2022
मुद्रित संख्या : 4000+4000 प्रतियाँ
द्वितीय संशोधित संस्करण : मार्च 2023
मुद्रित संख्या : 6000 प्रतियाँ
तृतीय संशोधित संस्करण : मार्च 2024
मुद्रित संख्या : 4000 प्रतियाँ
धम्म सेवा मूल्य : पच्चीस रुपये
(यह पच्चीस रूपये भिक्खु को या बौद्ध विहार में दान दे सकते हैं)

मुद्रक :
श्री बाला जी प्रींटिंग
सैक्टर–16, रोहिणी, दिल्ली–110089
मो: 9310810175

प्राक्कथन

मानव समाज जनतंत्र का आकांक्षी रहा है, लेकिन जनतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ बेशुमार रही हैं। विभिन्न युगों में इन चुनौतियों के विरूद्ध तमाम तरह के संघर्ष होते रहे हैं। इन चुनौतियों में से जाति–व्यवस्था एक बड़ी चुनौती रही है। इस जाति व्यवस्था को शासक वर्गों ने बेशकीमती मानव श्रम को कौड़ी के मोल हड़पने के लिए इज़ाद किया था। श्रमिक जातियों में इस कदर हीन भावना भर दी गई जिससे उनमें मनुष्य होने का अहसास तक जाता रहे। इसे स्थाई रूप देने के लिए उन्होंने विभिन्न धर्म ग्रंथों में अन्याय पूर्ण उपबन्ध किये। बहुजन शोषित आंदोलन के पुरोधा डॉ. भीमराव आम्बेडकर, मनुस्मृति नामक अन्याय मूलक कृति को जलाकर इसके विरूद्ध आन्दोलन की शुरूआत करते हैं।

भारतवर्ष में इसी प्रकार अनेक अमानवीय शोषणकारी व्यवस्थाएं शासक वर्ग के द्वारा शोषित वर्गों पर छल एवं बल पूर्वक थोपी गई। शोषित वर्ग ने समय–समय पर अमानवीय एवं शोषणकारी व्यवस्था के विरूद्ध न्यायपूर्ण मानवीयता पर आधारित, वैचारिक एवं तार्किक पूर्ण तरीके से अनेक आंदोलन किये।

प्रस्तुत पुस्तक ''बहुजनों के महानायक एवं समाज सुधारक'' एक बहुआयामी कृति है। जिसमें विद्वान लेखक श्री यशपाल सिंह कोठारी जी ने चक्रवर्ती सम्राट अशोक के शासन काल से लेकर आधुनिक काल की बीसवीं शताब्दी तक के समस्त महान जन–आन्दोलनकारियों एवं समाज सुधारकों के द्वारा भारत में सदियों से व्याप्त शोषणकारी व्यवस्था के खिलाफ शतत् संघर्ष का वर्णन अत्यंत मर्म स्पर्शी एवं तार्किक पूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक समाज विज्ञानियों, शोधार्थियों एवं सामाजिक परिवर्तन में संलग्न क्रांतिकारियों के लिए अत्यंत ही लाभप्रद सिद्ध होगी। मैं इस शोध परक कृति की रचना के लिए गुणी लेखक को साधुवाद देता हूँ।

डॉ. पूरन सिंह
उप प्रधानाचार्य
शिक्षा निदेशालय दिल्ली
मो. 9313118648

प्रस्तावना

बहुजनों के महानायक एवं समाज सुधारक नामक पुस्तक संक्षिप्त रूप में संकलित कर लेखक ने गागर में सागर का समावेश करने का प्रयास कर एक प्रशंसनीय कार्य किया है। बावन महानायकों, समाजसुधारकों, स्वतन्त्रता सैनानियों संतों तथा भक्तों जिन्होंने बहुजन समाज को उठाने का प्रयास किया उसका विशेष वर्णन इस पुस्तक में मिलता है, जिसमें लेखक ने बहुत ही पैनी दृष्टि तथा सूझ बूझ का प्रयास किया है।

हमारा बहुजन समाज पढ़ा लिखा कम तथा लिखा पढ़ा ज्यादा है क्योंकि इसने उन्हीं महानायकों तथा समाज सुधारकों को पढ़ा है जो ब्राह्मणों ने लिखा है। जिस दिन हमारा बहुजन समाज अपने महानायकों तथा समाज सुधारकों को पढ़ लेगा तो वह बगावत कर देगा।

बहुजनों के ''महानायक एवं समाजसुधारक'' पुस्तक लिखकर बहुजन समाज को अपने महानायकों, समाज सुधारकों स्वतन्त्रता सैनानियों संतों तथा भक्तों को जानने तथा उनसे प्रेरणा लेकर संगठित हो ऐसा लेखक का प्रयास है। इससे पूर्व यह कार्य किसी बहुजन लेखक ने किया हो तो मैं अनभिज्ञ हूँ।

1893 में स्वामी विवेकानन्द ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को ललकारते हुये कहा था। हे ब्राह्मणों सचेत हो जाओ और बहुजनों पर अत्याचार करना बन्द करो वरना जिस दिन ये एक हो गये उस दिन तुम्हें अपनी एक फूंक से उड़ा देंगे। अपने को कायम/बनाए रखने के लिए ब्राह्मण सचेत हो गये वह समरता के नाम पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग तथा आदिवासी के यहाँ रोटी खाकर सत्ताधारी बन गये परन्तु बहुजन समाज विवेकानन्द की बात को नहीं समझ पाया। जिस कारण आज भी वे सत्ता से बाहर है।

लेखक ने वही कार्य इस पुस्तक में किया है क्योंकि आज तक बहुजन समाज ब्राह्मण के महानायकों जैसे राम, कृष्ण, परशुराम, दुर्गा, पेशवाबाजीराव आदि तथा भक्तों जैसे सूर, तुलसी आदि का गुणगान करने में लगकर मानसिक गुलाम बने हुये हैं। अपने महानायकों एवं समाज सुधारकों से ज्यादातर बहुजन समाज अभी भी अनभिज्ञ हैं।

बहुजनों के ''महानायक एवं समाज सुधारक'' जो लेखक की एक अनुपम कृति है। बहुजन समाज इस पुस्तक से प्रेरणा लेकर संगठित होगा, ऐसा प्रयास लेखक का रहा है। मुझे आशा है प्रस्तुत पुस्तक बहुजन समाज को जागृत कर संगठित होकर संघर्ष कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर देश की सत्ता पर आसीन होगी।

''भवतु सब्ब मंगलम्''

डॉ. जे. एस. सागर
चिकित्सा अधिक्षक (सेवानिवृत)
दिल्ली नगर निगम
मो. 9650206067

दो शब्द

साथियों! जिस समाज को अपने महानायकों, समाज सुधारकों और उनके इतिहास की जानकारी नहीं होती है। ऐसे समाज का भविष्य अन्धकारमय होता है और उस समाज के लोगों मे वैचारिक गुलामी पनपने लगती है। इतिहास हमें प्रेरणा देता है, स्वाभिमान जगाता है और मनोबल बढ़ाता है। लगभग 2000 ईसा पूर्व की शताब्दियों में यूरेजियन स्टेपी (कजाखस्तान) से जो प्रवासी (आर्य) भारत में आये, वे कुछ वर्षों में ही यहाँ के कार्य कलापों में सलग्न हो गये। मौर्य साम्राज्य के अंतिम शासक बृहद्रथ को उनके ब्राह्मण (आर्य) सेनापति ने धोखे से कत्ल कर दिया था और स्वंय सत्ता पर आसीन हो गया। इन यूरेज़ियन आर्यों ने बहुजन मूलनिवासियों को पराजित और विभाजित करके गुलाम बना लिया था। इन्होंने बहुजन मूलनिवासियों के धम्म स्थलों और साहित्य को नष्ट कर दिया था। विदेशी आर्यों ने यहाँ वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था लागू करके अपनी पूजा पद्धति और धार्मिक साहित्य आदि को यहाँ के बहुजनों पर थोप दिया।

इस पुस्तक के माध्यम से मैंने बहुजनों के महानायकों, समाज सुधारकों, संतों, भक्तों और स्वतंत्रता सैनानियों का उल्लेख किया है। आप सभी बहुजन मूलनिवासी (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक, आदिवासी और पिछड़ा वर्ग) इनके बारे में पढ़कर जाग्रित और प्रेरित होंगे।

बहुजन समाज के उन सभी लोगों का मैं आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को लिखने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया। डॉ. जे.एस. सागर और डॉ. पूरन सिंह का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना और प्राक्कथन लिखकर हमें अपने विचारों से अवगत कराया।

''भवतु सब्ब मंगलम्''

लेखक
यशपाल सिंह कोठारी
ए–3/58, सैक्टर–15, रोहिणी,
दिल्ली–110089
मो. 9868960269

संक्षिप्त परिचय

यशपाल सिंह कोठारी

जन्म एवं परिवार : यशपाल सिंह कोठारी का जन्म 1 सितम्बर 1952 को गांव निठारी, तहसील जानसठ, जिला मुज़फ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ। यशपाल सिंह कोठारी के पिताजी चौ. नत्थू सिंह (मुन्शी जी) किसान जमींनदार रहे हैं, इनके पिताजी ने मुज़फ्फरनगर जिले के मीडिल स्कूल (मीरापुर) में एक दशक तक शिक्षक पद पर रहकर कार्य किया और दो दशक तक ग्राम पंचायत में सरपंच पद पर रहकर अपनी सेवायें दी।

शिक्षा : यशपाल सिंह कोठारी ने इंटरमीडिएट तक की पढ़ाई जानसठ से, बी.ए., एम.ए., बी.एड. व एल.एल.बी. तक की पढ़ाई मेरठ में रहकर मेरठ विश्वविद्यालय मेरठ (चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय) से पूरी की है।

सरकारी सेवाएँ : इन्होंने वर्ष 1975 से एक वर्ष सेल टैक्स विभाग (कलैक्शन) मेरठ में कार्य किया। वर्ष 1976 से 1979 तक भारतीय खाद्य निगम मेरठ में ए.जी.।।। के पद पर कार्य किया, तथा नवम्बर 1979 से दिल्ली प्रशासन, दिल्ली में टी.जी.टी. (शिक्षक) पद पर नौकरी ग्रहण कर ली। अपनी कर्मठता, ईमानदारी और समय के साथ इनकी पदोन्नति भूगोल प्रवक्ता, उप प्रधानाचार्य और वर्ष 2010 में प्रधानाचार्य के पद पर हुई। अगस्त 2014 में दो वर्ष का एक्सटेंशन के बाद दिल्ली प्रशासन के रा.उ.मा. बाल विद्यालय सैक्टर–16, रोहिणी, दिल्ली से प्रधानाचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए।

निवास : इन्होंने ग्यारह वर्ष ईस्ट गोकलपुर शाहदरा में रहने के बाद वर्ष 1993 में अपना निवास स्थान ब्लॉक ए–3, सैक्टर–15, रोहिणी, दिल्ली में बना लिया।

पत्नी व बच्चे : इनके परिवार में दो पुत्र और दो पुत्रियां हैं, सभी विवाहित हैं। उच्च शिक्षा के बाद सरकारी और गैर सरकारी सेवा में उच्च पदों पर कार्यरत हैं। इनको हर कार्यक्षेत्र में पत्नी का सहयोग और साथ रहा है। इनकी पत्नी एम.ए., बी.एड. हैं जो प्रवक्ता (हिन्दी) के पद से 2015 में दिल्ली प्रशासन, दिल्ली से सेवानिवृत्त हुई हैं।

सामाजिक कार्य : यशपाल सिंह कोठारी ने अपने सर्विस कार्यकाल में छठी से दसवीं कक्षाओं के लिए सामाजिक विषय की सहायक पुस्तकें लिखीं। सेवा निवृत्ति के बाद बौद्ध समाज के लिए वन्दना रोज सवेरे, त्रिरत्न, संस्कार, धम्म उपदेश और जाने इतिहास पुस्तकों को आप तक पहुंचाया और अब "बहुजनों के महानायक एवं समाज सुधारक" पुस्तक आपके बीच है। यशपाल सिंह कोठारी लगभग तीन दशकों से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में धम्म की सेवा में लगे हुए हैं।

श्रीमती ब्रजबाला कोठारी
सेवानिवृत्त हिन्दी प्रवक्ता
शिक्षा विभाग, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली

विषय–सूची

क्रमांक	विषय	समय/काल	पृष्ठ
1	भारत के मूल निवासी कौन?		10
2	चक्रवर्ती सम्राट अशोक	(304 ईसा पूर्व – 232 ईसापूर्व)	11
3	राजा मिहिर भोज	(836 ईस्वी – 885 ईस्वी)	12
4	संत रविदास	(अनुमानित 1398 ईस्वी – 1520 ईस्वी)	14
5	संत कबीरदास	(अनुमानित सन् 1398 – सन् 1518)	15
6	जीजाबाई	(12 जनवरी 1598 – 17 जून 1674)	17
7	संभाजी महाराज	(14 मई 1657 – 11 मार्च 1689)	18
8	अहिल्याबाई होलकर	(31 मई 1725 – 13 अगस्त 1795)	20
9	गुरु घासीदास बाबा	(18 दिसम्बर 1756 –····· 1850)	21
10	महात्मा ज्योतिबा फुले	(11 अप्रैल 1827 – 28 नवम्बर 1890)	23
11	झलकारी बाई	(22 नवम्बर 1830 – 4 अप्रैल 1857)	24
12	सावित्री बाई फुले	(3 जनवरी 1831 – 10 मार्च 1897)	26
13	रानी अवंती बाई लोधी	(16 अगस्त 1831 – 20 मार्च 1858)	27
14	फातिमा शेख	(21 सितम्बर 1832 – 9 अक्टूबर 1900)	29
15	नारायण गुरु	(20 अगस्त 1856 – 20 सितम्बर 1928)	31
16	सयाजी राव गायकवाड़	(11 मार्च 1863 – 6 फरवरी 1939)	32
17	संत अय्यन काली	(28 अगस्त 1863 – 18 जून 1941)	33
18	छत्रपति शाहू जी महाराज	(26 जून 1874 – 6 मई 1922)	34
19	जननायक बिरसा मुंडा	(15 नवम्बर 1875 – 9 जून 1900)	37
20	संत गाडगे महाराज	(23 फरवरी 1876 – 20 दिसम्बर 1956)	38
21	स्वामी अछूतानंद हरिहर	(6 मई 1879 – 20 जुलाई 1933)	39
22	पेरियार ई. वी. रामास्वामी	(17 सितम्बर 1879 – 24 दिसम्बर 1973)	41
23	महात्मा संतराम बी. ए.	(14 फरवरी 1887 – 31 मई 1988)	42
24	सर छोटू राम	(24 नवम्बर 1881 – 9 जनवरी 1945)	44
25	बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर	(14 अप्रैल 1891 – 6 दिसम्बर 1956)	45
26	माता रमाबाई आंबेडकर	(7 फरवरी 1898 – 27 मई 1935)	48
27	शहीद उधम सिंह	(26 दिसम्बर 1899 – 31 जुलाई 1940)	49

विषय–सूची

क्रमांक	विषय	समय/काल	पृष्ठ
28	दादा साहेब गायकवाड़	(15 अक्टूबर 1902 – 29 दिसम्बर 1971)	50
29	महानायक जयपाल मुंडा	(3 जनवरी 1903 – 20 मार्च 1970)	51
30	शहीद भगत सिंह	(28 सितम्बर 1907 – 23 मार्च 1931)	52
31	पेरियार ललई सिंह यादव	(1 सितम्बर 1911 – 7 फरवरी 1993)	53
32	बाबू जगदेव प्रसाद कुशवाहा	(2 फरवरी 1922 – 5 सितम्बर 1974)	55
33	साहेब कांशीराम	(15 मार्च 1934 – 9 अक्टूबर 2006)	57
34	रामदयाल मुंडा	(23 अगस्त 1939 – 30 सितम्बर 2011)	59
35	संत बसवेश्वर	(ई. स. 1105 – ई. स. 1167)	60
36	संत नरहरि सोनार	(शक. स. 1115 – शक. स. 1207)	61
37	संत सेन महाराज नाई	(वि.सं. 1357 – वि. सं. 1440)	62
38	संत सावता माली	(ई. स. 1250 – ई. सं 1295)	63
39	संत गोरा कुम्हार	(ई. स. 1267 – ई. स. 1317)	63
40	संत नामदेव	(26 अक्टूबर 1270 – 3 जुलाई 1350)	64
41	संत तुकाराम महाराज	(सन् 1598 – सन् 1650)	65
42	संत जगनाडे महाराज	(सन् 1624 – सन् 1688)	66
43	ऊदा देवी पासी	(30 जून 1830 – 16 नवम्बर 1857)	67
44	मातादीन वाल्मीकि	(.....– 8 अप्रैल 1857)	68
45	संत दुर्बलनाथ	(1861 ई. – 1929 ई.)	69
46	शिव दयाल सिंह चौरसिया	(13 मार्च 1903 – 18 सितम्बर 1995)	70
47	जोगेन्द्र नाथ मण्डल	(29 जनवरी 1904 – 5 अक्टूबर 1968)	71
48	संत तुकडोजी महाराज	(30 अप्रैल 1909 – 11 अक्टूबर 1968)	73
49	बाबू जगजीवन राम	(5 अप्रैल 1908 – 6 जुलाई 1986)	74
50	बी. पी. मंडल	(25 अगस्त 1918 – 13 अप्रैल 1982)	75
51	रामस्वरूप वर्मा	(22 अगस्त 1923 – 19 अगस्त 1998)	76
52	दीना भाना	(28 फरवरी 1928 – 29 अगस्त 2006)	77
53	डी.के. खापर्डे	(13 मई 1939 – 29 फरवरी 2000)	78

देश के किसी भी समाज में विविध और विभिन्न प्रकार के लोग रहते हैं, इनमें से समाज के कुछ लोग तथाकथित अपने को उच्च और दूसरे को निम्न मानकर उनका शोषण करते हैं। इसी शोषणकारी कृत्य ने लम्बे समय से सामाजिक बुराई का रूप ले रखा है। हर देश में समाज के दबे–कुचले (शोषित) लोगों की प्रगति के लिए ऐसे चमकदार व्यक्तित्व के रूप में समाज सुधारक हुए हैं जो सामने आकर शोषित समाज के लिए कार्य करते हैं और सामाजिक बुराईयों को दूर करते रहे हैं। यदि देखा जाए तो बहुजन शोषित समाज के प्रवक्ता और आधार स्तम्भ दोनों ही डॉ. आंबेडकर रहे हैं। यदि डॉ. आंबेडकर से पहले पिछड़े समाज के सुधारकों की बात की जाए तो जिन्होंने बहुजन आन्दोलन के जरिए सबसे पहले धार्मिक वर्चस्व को तोड़ने का काम किया था। उस समय समाज में जाति, धर्म और सम्प्रदाय के कारण ब्राह्मणवादी व्यवस्था कायम थी। इसलिए भारत में सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक विषमता बहुत बुरी तरह फैली हुई थी। पिछड़े समाज के जननायकों ने इस विषमता को तोड़ने के लिए ब्राह्मणवाद और सामंतवाद के खिलाफ आवाज उठायी। जैसा कि आप जानते हैं ब्राह्मणवादी विचारधारा की पोषक सामंतीवादी व्यवस्था होती है, इसलिए सामाजिक विषमता को खत्म करने के लिए इसके (सामंतवाद) खिलाफ भी आवाज उठानी जरूरी थी।

बहुजनों के सभी आन्दोलन धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक शोषण के खिलाफ किये गये। इन आन्दोलनों को राजनीतिक और सांस्कृतिक दो स्वरूपों में देखा जा सकता है। राजनीतिक आन्दोलन साहू जी महाराज ने किया, पेरियार रामास्वामी ने किया, और लोगों ने भी अपने–अपने समय पर आन्दोलन चलाया। डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक और राजनीतिक दोनों तरह के आन्दोलन बहुत व्यापक रूप में चलाए, जिसका प्रभाव और प्रसार महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और अन्य कई राज्यों में हुआ। भारत देश में जितने भी सांस्कृतिक आन्दोलन हुए उसमें पिछड़े वर्ग के समाज सुधारकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें जोतिबा फुले, ललई सिंह यादव, राम स्वरूप वर्मा, सावित्रीबाई फुले आदि का नाम उल्लेखनीय है।

1. भारत के मूल निवासी कौन?

वैज्ञानिकों के अनुसार धरती पर जीवन की उत्पत्ति 60 करोड़ वर्ष पूर्व हुई, लगभग 20 करोड़ वर्ष पूर्व धरती पर दबाव–भींचाव और सरकने की प्रक्रिया के कारण पाँच महाद्वीपों की उत्पत्ति हुई। इन महाद्वीपों पर लगभग 2.6 करोड़ वर्ष पूर्व ''होमिनिड'' मानव की उत्पत्ति मानी गयी है, लेकिन आधुनिक मानव ने जो यह प्रगति की है वह 200 से 400 पीढ़ियों के दौरान हुई है। उससे पूर्व मानव पशुओं के समान अपना जीवन व्यतीत करता था।

प्रत्येक देश का नागरिक अपने आपको वहाँ का मूलनिवासी मानता है, फिर भी इतिहास और विज्ञान की नजरों से जाने कि भारत का मूलनिवासी कौन है? विज्ञानिकों के अनुसार– आज का विश्व करोड़ों वर्ष पहले विशाल उभरा हुआ भूखण्ड (एंजियाद्वीप राष्ट्र) था। जिसके चारों ओर समुद्र था अर्थात् आज के सभी महाद्वीप यूरोप, अफ्रीका, एशिया, ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका एक दूसरे से जुड़े हुए थे।

हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के डेविड रेक ने जेनेटिसिस्ट शोध में लिखा है कि पिछले 10 हजार सालों में भारत में दो बार बड़ी संख्या में लोग आए। सबसे पहले दक्षिण–पश्चिम ईरान के जैग्रोस प्रान्त से बड़े पैमाने पर लोग भारत में आए ये लोग कृषक और पशुपालक थे। इन जैग्रोंसयाई पशुपालकों का भारतीय उप महाद्वीप पर पहले से रह रहे लोगों के साथ मिश्रण हुआ। पहले से रहने वाले लोग जिन्हें हम शुरूआती भारतीय (फर्स्ट इंडियंस) कह सकते हैं, वे भी 65000 साल पहले एक साथ अफ्रीका से भारत में आये थे। इस तरह इन दोनों ने मिलकर हड़प्पा सभ्यता को बसाया। इन्हें ही हम भारत के मूल निवासी कहते हैं। लगभग 2000 ईसा पूर्व की शताब्दियों में यूरेशियन स्टेपी प्रान्त से प्रवासियों का दूसरा जत्था भारत में आया। यही लोग संस्कृत का शुरूआती प्रारूप, घुड़सवारी, बलि परम्परा जैसी संस्कृति को अपने साथ लाए। इन्होंने भारत में आकर धीरे–धीरे हिन्दू वैदिक संस्कृति को अपना आधार बना लिया। अध्ययन बताता है कि भारतीयों की जेनेटिक्स में 50 से 65 प्रतिशत का हिस्सा फर्स्ट इंडियंस का है।

भारत में अंग्रेजों और वामपंथी इतिहासकारों ने हमेशा यह कहा कि आर्य भारत के मूलनिवासी नहीं थे। आर्य मध्य यूरेशिया से आये विदेशी थे। आर्यों के भारत में आने से पहले ही यहां हड़प्पा सभ्यता और सिन्धु घाटी सभ्यता मौजूद थी। सिन्धु घाटी सभ्यता आज से लगभग 8000 वर्ष पुरानी है।

यहाँ हम उन महानायकों एवं समाज सुधारकों का उल्लेख कर रहे हैं जिन्होंने अपने–अपने समय में यहाँ के बहुजनों को और उनकी संस्कृति को विश्व में फैलाने का काम किया और समाज को एक नयी दिशा दी।

2. चक्रवर्ती सम्राट अशोक (304 ईसा पूर्व – 232 ईसापूर्व)

जन्म एवं स्थान – मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य के पौते व बिन्दुसार के पुत्र के रूप में सम्राट अशोक का जन्म 304 ईसा पूर्व में बिहार के पाटलिपुत्र (पटना) में हुआ था। राजवंश परिवार में पैदा हुए सम्राट अशोक बचपन से ही बेहद प्रतिभावान और तीव्र बुद्धि के बालक थे। सम्राट अशोक तीरंदाजी में बहुत कुशल थे, जिसके कारण वे एक उच्च श्रेणी के शिकारी कहलाते थे। एक बार मौर्य साम्राज्य के अवन्ती की राजधानी उज्जैन के लोगों और यूनान मूल के लोगों के बीच दँगा भड़क उठा। अशोक के बड़े भाई सुशीम वहाँ के प्रान्तपाल थे। वहाँ की स्थिति को देखते हुए राजा बिन्दुसार ने अपने छोटे पुत्र अशोक को इस विद्रोह को दबाने के लिए भेजा, जिसके बाद अशोक ने अपनी कुशल रणनीति अपनाते हुए इस विद्रोह को शांत किया। इस कार्य से प्रभावित होकर राजा बिन्दुसार ने सम्राट अशोक को मौर्य वंश का शासक नियुक्त कर दिया।

परिवार एवं साम्राज्य – सम्राट अशोक ने इन पांच रानियों देवी, चारूवाकी, पद्मावती, तिष्यरक्षिता और शाक्या कुमारी से विवाह किए थे। इनमें से सबसे बाद में विदिशा की बेहद सुन्दर राजकुमारी शाक्या कुमारी से विवाह हुआ। शादी के बाद सम्राट अशोक के यहाँ पाँच संतानें महेन्द्र, संघमित्रा, तीवर, कुणाल और चारूमती प्राप्त हुई। कुछ इतिहासकारों का कहना है, मौर्य वंश के सम्राट अशोक ने अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए करीब 8 सालों तक युद्ध लड़ा। इस दौरान उन्होंने पूरे भारतीय उप महाद्वीप (भारत, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान, म्यान्मार) के साथ ईरान व अफगानिस्तान के हिन्दूकुश तक मौर्य साम्राज्य का विस्तार किया। सम्राट अशोक ने दक्षिण के मैसूर (कर्नाटक) और कृष्णा गोदावरी की घाटी के क्षेत्रों पर अपना कब्जा किया, परन्तु तमिलनाडु, केरल तक अपने साम्राज्य का विस्तार करने में कामयाब नहीं हुए। 261 ईसा पूर्व सम्राट अशोक ने मौर्य साम्राज्य का विस्तार करने के लिए कलिंग (ओडिशा) राज्य पर आक्रमण कर दिया, इस भीषण युद्ध में 1 लाख लोगों और सैनिकों की हत्या हो गयी। सम्राट अशोक ने कलिंग पर अपना कब्जा करके मौर्य वंश का विस्तार कर वहाँ के भी शासक बन गए। सम्राट अशोक का विशाल साम्राज्य उस समय से आज तक का सबसे बड़ा भारतीय साम्राज्य रहा है। चक्रवर्ती सम्राट अशोक विश्व के सभी महान व शक्तिशाली राजाओं में हमेशा शीर्ष पर रहे हैं।

बौद्ध धम्म के अनुयायी – कलिंग युद्ध के पश्चात भयंकर विनाश और खून–खराबा देखकर सम्राट अशोक का हृदय परिवर्तन हुआ और तथागत बुद्ध

की शिक्षा से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म को अपनाया। बौद्ध धर्म (धम्म) के अनुयाई होने के बाद सम्राट अशोक ने भारत और अन्य देशों (पश्चिम एशिया, मिश्र, यूनान, श्रीलंका, अफ़गानिस्तान) में भी बौद्ध धर्म का प्रचार और प्रसार करवाया। सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेन्द्र और अपनी पुत्री संघमित्रा को बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए श्रीलंका भेजा।

सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाने के बाद भारतीय उप महाद्वीप में अलग–अलग स्थानों पर जाकर शिलालेखों और स्तूपों का निर्माण करवाया। अशोक द्वारा 269 ईसा पूर्व से 232 ईसा पूर्व तक के अपने शासनकाल में चट्टानों और पत्थरों के स्तम्भों पर कई नैतिक, धार्मिक और राजकीय शिक्षा के शिलालेख खुदवाए थे। इतिहासकारों को ये शिलालेख भारत के विभिन्न प्रदेशों में मिले और बाहर के देश अफगानिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान और श्रीलंका इत्यादि देशों में मिले हैं। सम्राट अशोक के समय में 23 विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई, जिसमें तक्षशीला, नालंदा, विक्रमशीला, कंधार आदि विश्वविद्यालय प्रमुख थे। इन्हीं विश्वविद्यालयों में विदेश से छात्र शिक्षा पाने के लिए भारत आया करते थे। सम्राट अशोक ने 84000 बौद्ध विहार (स्तूप) बनवाये थे, जिनमें से आज कुछ प्राचीन बौद्ध विहार ही मौजूद हैं।

मृत्यु – सम्राट अशोक ने लगभग 36 वर्षों तक शासन किया, जिसके बाद लगभग 232 ईसा पूर्व में उनकी मृत्यु हुई। अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य पश्चिमी और पूर्वी भाग में बँट गया। पश्चिमी भाग पर कुणाल शासन करता रहा और पूर्वी भाग पर सम्प्रति का शासन रहा, उसके बाद 180 ईसा पूर्व तक पश्चिमी भाग पर बैक्ट्रिया यूनानी का अधिकार हो गया था। पूर्वी भाग पर बृहद्रथ का राज्य था, जो मौर्य वंश का अंतिम शासक था। अशोक के शासनकाल के बाद आगे के पाँच दशक तक मौर्य वंश के सभी उत्तराधिकारी शासन संचालन के लिए कमजोर साबित हुए।

3. राजा मिहिर भोज (836 ईस्वी – 885 ईस्वी)

जीवन परिचय – मिहिर भोज भारत के एक महान प्रतापी राजा थे, जिन्होंने भारतीय उप महाद्वीप के उत्तरी हिस्से में लगभग 49 वर्षों तक शासन किया था। उनका साम्राज्य उत्तर में हिमालय, दक्षिण में नर्मदा, पूर्व में बंगाल और पश्चिम में सतलुज तक फैला हुआ था। इतिहासकारों ने लिखा है कि मिहिर भोज प्रतिहार वंश के सबसे शक्तिशाली शासक थे, जिन्होंने 836 ईस्वी से लेकर 885 ईस्वी तक शासन किया था। कन्नौज इनका मुख्य शासक

(राजधानी) क्षेत्र रहा था। इन्होंने अरब के आक्रमणों को रोकने के लिए मुख्यतः अश्व सेना का ही उपयोग किया था।

मिहिर भोज प्रतिहार वंश के राजा रामभद्र के पुत्र और नागभट्ट द्वितीय के पौत्र थे, जो गुज्जर (गुर्जर) प्रतिहार वंश के सबसे प्रतापी राजा थे। सम्राट मिहिर भोज की पत्नी का नाम चन्द्रभट्टारिका देवी था, जो भाटी वंश की थी।

शासनकाल – सम्राट मिहिर भोज के पडौसी मित्र राजा काबुल के ललिया शाही, कश्मीर के उत्पल, नेपाल के राघवदेव और आसाम के राजा थे। परन्तु उस समय कुछ शत्रु राजा भी थे जिनमें पालवंशी देवपाल, दक्षिण के राष्ट्र कटू महाराज अमोधवर्ष और अरब के खलीफा मौतसिम वासिक, मुत्वक्कल, मुन्तशिर, मौतमिदादी थे। मिहिर भोज ने जब अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहा तो उन्हें बंगाल के पाल शासक धर्मपाल से पराजित होना पड़ा। उसके बाद राष्ट्रकूट शासक ध्रुव ने भी इन्हें पराजित कर दिया। पाल वंश के शासक देवपाल की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी नारायण को राजा भोज ने परास्त कर पाल राज्य के एक बड़े भू भाग पर अपना अधिकार कर लिया। दक्षिण के राष्ट्र कूट राजा अमोधवर्ष को भी पराजित करके उनके क्षेत्र को अपने साम्राज्य में मिला लिया था। सिन्ध के अरब शासक इमरान बिन मूसा को भी पूरी तरह पराजित करके समस्त सिन्ध को अपने साम्राज्य का अभिन्न अंग बना लिया था।

मिहिर भोज अपने जीवन के पचास वर्ष युद्ध के मैदान में घोडे की पीठ पर युद्धों में व्यस्त रहा। उसकी चार सेना थी उनमें से एक सेना कनकपाल परमार के नेतृत्व में गढ़वाल में, दूसरी सेना नेपाल में राघवदेव के नेतृत्व में तिब्बत के आक्रमणों से रक्षा करती रही, तीसरी सेना अल्कानदेव के नेतृत्व में पंजाब के गुजराजनगर के समीप नियुक्त थी जो काबुल तुर्किस्तान की तरफ से होने वाले आक्रमणों से रक्षा करती थी, चौथी सेना दक्षिण में मानकि के राजा बल्हारा से होने वाले आक्रमणों से रक्षा करती थी। सम्राट मिहिर भोज इन चारों सेनाओं का संचालन, मार्गदर्शन और नियंत्रण स्वयं किया करते थे।

मिहिर भोज का निधन – लगभग 49 वर्षों तक सफलता पूर्वक शासन करने के पश्चात सम्राट मिहिर भोज ने अपने पुत्र महेन्द्रपाल प्रथम को राज्य की बागडोर सौंप दी, और उन्होंने सन्यासी का जीवन व्यतीत करने के लिए जंगल की ओर चले गये। सम्राट मिहिर भोज की मृत्यु सामान्य रूप से 885 ईस्वी में हुई।

4. संत रविदास (अनुमानित 1398 ईस्वी – 1520 ईस्वी)

जीवन परिचय – संत शिरोमणि रविदास का जन्म माघ पूर्णिमा 1398 ईस्वी को उत्तर प्रदेश के वाराणसी के पास गोबर्धनपुर गांव में हुआ था। उनकी माता का नाम कलसी देवी तथा पिता का नाम संतोखदास था। उनके दादा का नाम श्री कालूराम, दादी का नाम लखपती था। इनकी पत्नी का नाम श्रीमती लोना और पुत्र का नाम विजयदास था।

संत रविदास का जन्म 15वीं शताब्दी में ऐसे समय में हुआ था जब उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में मुगलों का शासन था। उस समय भ्रष्टाचार, अत्याचार, अशिक्षा और गरीबी चारों ओर फैली थी। मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दुओं को मुस्लिम बनाने का प्रयास किया जाता था। उनका सोचना था कि यदि रविदास मुस्लिम बन जाते हैं तो उनके लाखों भक्त मुस्लिम हो जाएगें। परन्तु रविदास एक ऐसे संत थे जिन्हें किसी हिन्दु या मुस्लिम से नहीं, मानवता से मतलब था।

भक्तिकाल और मध्ययुगीन संत – संत रविदास जी धर्म के नाम पर प्रचलित अंधविश्वास, आडम्बर और कर्मकांड को निरर्थक मानते थे। इनकी भक्ति साधना में भावुकता, विनम्रता और प्रेम की प्रधानता थी। संत रविदास गुरु–महिमा और सत्संग के समर्थक थे। उनके अनुसार सत्संगति के बिना भगवान के प्रति प्रेम नहीं हो सकता और भगवत्प्रेम के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। संत रविदास ने अपनी काव्य रचनाओं में सरल, व्यावहारिक और ब्रजभाषा का प्रयोग किया, जिसमें अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली और उर्दू–फारसी के शब्दों का मिश्रण मिलता है। संत रविदास के चालीस पद सिखों के पवित्र धर्म ग्रंथ ''गुरु ग्रंथ साहब'' में भी सम्मिलित है।

संत रविदास की वाणी में भक्ति की सच्ची भावना, समाज के हित की कामना, तथा मानव प्रेम से ओत–प्रोत होती थी। इसलिए उसका श्रोताओं के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता था। उनके भजनों तथा उपदेशों से लोगों को ऐसी शिक्षा मिलती थी जिससे उनकी शंकाओं का समाधान हो जाता था और फिर वे लोग उनके अनुयायी बन जाते थे। उनकी वाणी का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि समाज के अन्य वर्ग के लोग भी उनके श्रद्धालु बन गये। मीराबाई भी उनकी भक्ति भावना से प्रभावित होकर उनकी शिष्या बन गयी थीं।

संत रविदास के अपने दोहों व पदों के माध्यम से समाज में जातिगत भेदभाव को दूर कर सामाजिक एकता पर बल दिया और मानवतावादी विचारों की नींव रखी। संत रविदास जी ने सीधे–सीधे अपने दोहों में लिखा कि– ''रैदास जन्म के कारने, होत न कोई नीच, नर कूं नीच कर डारि है ओछे करम

की कीच'' यानि कोई भी व्यक्ति सिर्फ अपने कर्म से नीच होता है, अर्थात जो व्यक्ति गलत काम करता है वह नीच होता है। इसलिए कोई भी व्यक्ति जन्म के हिसाब से कभी नीच नहीं होता। संत रविदास आगे कहते हैं– ''रैदास ब्राह्मण मत पूजिए, जऊ होवे गुणहीन, पूजहि चरण चंडाल के, जऊ होवे गुण परवीन, ब्राह्मण अगर मूर्ख हो, उसमें कोई गुण न हो तो ऐसे ब्राह्मण को कभी महत्व नहीं देना चाहिए और न ही उसकी पूजा करनी चाहिए। वहीं एक निम्न कुल में पैदा हुआ व्यक्ति जो अछूत ही क्यों न हो परन्तु उसमें गुण हो, दया–भाव, मैत्री–करूणा हो, हर विद्या में दक्ष हो तो उसको महत्व देना चाहिए और उसके चरणों की पूजा करनी चाहिए।

मृत्यु – संत रविदास की मृत्यु के रहस्य को बहुजन समाज के विरोधियों ने उनका सीना चीरकर जनेऊ दिखाने का चमत्कार बता दिया जबकि संत रविदास चमत्कारवाद के प्रबल विरोधी थे। संत रविदास जी को चितौड़ के राजा ने अपने राज्य में ब्राह्मणों के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए आमंत्रित किया। वहाँ उनसे कहा गया यूं तो ब्राह्मण ही ज्ञानी–बुद्धिमानी होते हैं जिन्हें सभी वेद–पुराणों का ज्ञान होता है और जो ज्ञान के प्रतीक में जनेऊ धारण करते हैं, ब्राह्मणों के उकसाने पर राजा ने कहा रविदास जी आप ज्ञानी है तो अपनी जनेऊ दिखलाओ। रविदास जी ने कहा– मैं शरीर पर दिखावटी जनेऊ धारण नहीं करता, मेरे अर्न्तमन में ज्ञान का प्रतीक जनेऊ धारण है। रविदास जी के विराधियों (ब्राह्मणों) ने उनका सीना चीर डाला और उनकी मृत्यु हो गयी। इसके बाद ब्राह्मणों ने रविदास जी की जय जयकार करके उनके शरीर को राजमहल में एकत्र हुई जनता के सामने यह कहकर सौंपा कि रविदास जी सच्चे भक्त थे। उन्होंने अपना सीना चीर कर जनेऊ दिखाया और फिर उसके बाद उनकी मृत्यु हो गयी। यह सब उस समय एक कहानी प्रचारित की (गढ़ी) गयी। संत रविदास जी द्वारा राँपी से अपना सीना चीरकर जनेऊ दिखाने वाली कपोल कल्पित कहानी को सच्चाई मान लिया गया। संत रविदास जी की मृत्यु 1520 ईस्वी में हुई थी।

5. संत कबीरदास (अनुमानित सन् 1398 – सन् 1518)

जीवन परिचय – संत कबीरदास 15वीं शताब्दी के रहस्यवादी कवि और संत थे। कबीरदास हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के इकलौते ऐसे कवि थे जो आजीवन समाज और लोगों के बीच व्याप्त आडंबरों पर कुठाराघात करते रहे। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराईयों की दोहों के माध्यम से कड़ी आलोचना भी की थी।

कबीरदास का जन्म सन् 1398 (सवंत 1455) में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा पर काशी में हुआ था। कबीरदास के जन्म के बारे में लोगों की अपनी-अपनी कहानियां हैं, कबीर पंथियों का मानना है कि कबीर का जन्म काशी में लहरतारा तालाब में कमल के ऊपर बालक के रूप में हुआ था, कुछ लोगों का मानना है कि वे काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुए थे, ब्राह्मणी उस नवजात शिशु को लहरतारा तालाब के पास फेंक आयी थी। कबीर के माता-पिता के विषय में लोगों की एक राय नहीं है कि कबीर ''नीमा-नीरू'' की वास्तविक संतान थे या नीमा-नीरू ने केवल इनका पालन-पोषण ही किया था। कहा जाता है कि नीरू जुलाहे को यह बच्चा लहरतारा तालाब पर पड़ा पाया, जिसे वह अपने घर ले आया और उसका पालन-पोषण किया। बाद में यही बालक कबीर कहलाया। ऐसा भी कहा जाता है कि कबीर जन्म से मुसलमान थे और बड़े होने पर स्वामी रामानन्द के प्रभाव से उन्हें हिन्दू धर्म का ज्ञान हुआ। उन्होंने स्वामी रामानन्द को अपना दीक्षा गुरू माना। कबीर पढ़े लिखे नहीं थे लेकिन उनमें अद्भूत ज्ञान के साथ-साथ वे प्रतिभा सम्पन्न थे। कबीरदास का युग सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से बहुत अशांत था। समाज में धार्मिक द्वेष, ऊँच-नीच, अंध विश्वास, जाति-पाति तथा वर्ग वैमनस्य आदि व्याप्त था। कबीरदास जी ने इनका डट कर मुकाबला किया। कबीरदास की कविताओं का एक-एक शब्द पाखंड और पाखंडवाद व धर्म के नाम पर ढोंग करने वालों के खिलाफ था, उनके दोहे मौलवियों और पंडितों के द्वारा किए जाने वाले पाखंड का विरोध करने वाले थे।

कबीरदास की रचनाएं – कबीरदास के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। कबीर के साहित्य में बीजक को प्रमाणित रचना माना जाता है। कबीरपंथी इसे महत्वपूर्ण ग्रंथ मानते हैं, इसमें दार्शनिक सिद्धांतों का सारतत्व उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त साखी, सबद, रमैनी, वसंत, वेलि हिंडोला और चौतीसी आदि अन्य काव्य रूपों का साहित्य भी मिलता है।

वैवाहिक जीवन – कबीरदास का विवाह वनखेडी बैरागी की कन्या लोई के साथ हुआ था। कबीरदास जी के यहाँ एक पुत्र कमाल और एक पुत्री कमाली नाम की दो संतान थी। कुछ लोगों का कहना है कि कबीरदास को कबीर पंथ में बाल ब्रह्मचारी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार कमाल उनका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या थी।

कबीरदास की मृत्यु – कबीरदास की मृत्यु काशी के पास मगहर में सन् 1518 में हुई थी। उनकी मृत्यु के बाद अंतिम संस्कार के लिए विवाद पैदा हो गया, हिन्दुओं का मानना था कि उनका अंतिम संस्कार हिन्दू रीति रिवाजों से ही हो, जबकि

मुसलमान समाज उन्हें अपना मानता था, इसलिए वे उन्हें इस्लामी रीति रिवाजों के तहत दफन करना चाहते थे। इसी विवाद के चलते उनके शव पर से चादर हट गई, तब लोगों ने वहाँ फूलों का ढेर पड़ा देखा। इसके बाद वहाँ से आधे फूल हिन्दुओं ने ले लिए और आधे फूल मुसलमानों ने ले लिए। मुसलमानों ने मुस्लिम रीति से और हिन्दुओं ने हिन्दू रीति से उन फूलों का अंतिम संस्कार किया। मगहर में कबीरदास जी की समाधि है।

6. जीजाबाई (12 जनवरी 1598 – 17 जून 1674)

जीवन परिचय – जीजाबाई को मराठा साम्राज्य की राजमाता तथा जीजाऊ भी कहा जाता है क्योंकि उन्होंने ही मराठा साम्राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज को जन्म दिया था। जीजाबाई का जन्म 12 जनवरी 1598 को बुलढ़ाणा जिले के सिंदखेड राजा क्षेत्र (महाराष्ट्र) में हुआ था। उनके पिता लखुजी जाधव थे जो निजाम शाही सुल्तान के दरबार में जागीरदार थे अर्थात् लखुजी उनके राज्य के एक छोटे हिस्से को संभाला करते थे। उनकी माता का नाम महालसाबाई जाधव था। जीजाबाई जाधव परिवार में जन्मी थी, उस समय के रीति-रिवाजों के अनुसार उनका विवाह छोटी उम्र में ही शाह जी भोंसले के साथ हो गया था। विवाह के बाद उनका उपनाम जाधव के स्थान पर भोंसले बन गया था। जिसके बाद से उन्हें जीजाबाई भोंसले के नाम से जाना गया।

जीजाबाई तथा शाह जी भोंसले के छः पुत्रियाँ थी और दो पुत्र संभा जी भोंसले तथा छत्रपति शिवाजी भोंसले थे। शाह जी भोंसले बीजापुर के शासक आदिलशाह के दरबार में एक जागीरदार थे। जिसकी वजह से वह अपने लालमहल को छोड़कर बीजापुर में रहने लगे। वह अपने बड़े बेटे संभा जी को भी वहीं लेकर चले गये। उनका छोटा बेटा शिवाजी तथा पत्नी जीजाबाई अभी भी लालमहल में ही रहते थे। जिनके साथ दादा कोंडदेव व सहायक तथा अन्य लोग भी रहा करते थे। शिवाजी का पालन-पोषण उनकी माता जीजाबाई ने किया तथा उनके दादा कोंडदेव ने उन्हें शिक्षा दी।

जीजाबाई बहुत चतुर और बुद्धिमान माता थी। शाह जी भोंसले मराठा साम्राज्य का विस्तार करना चाहते थे। मगर उस समय मुगल और बीजापुर के शासक आदिलशाह एक हो गए और दोनों ने मिलकर शाह जी भोंसले से युद्ध किया और उन्हें पराजित कर दिया था। मुगलों और आदिलशाह के साथ शाह जी राजे भोंसले की संधि हुई कि शाह जी को विस्तार वादी नीति को छोड़ देनी है। कुछ समय बाद आदिलशाह के सेनापति अफजल खान के साथ शाह जी

भोंसले का युद्ध हुआ और युद्ध में शाह जी भोंसले के साथ उनके बेटे संभा जी भोंसले को भी मार दिया था। पति की मृत्यु के बाद जीजाबाई ने सती होने की कोशिश की थी। मगर छत्रपति शिवाजी ने अपनी माता को रोक दिया था क्योंकि शिवाजी राजमाता को अपना मित्र, मार्गदर्शक और प्रेरणाश्रोत मानते थे। इसके कारण ही शिवाजी बहुत छोटी उम्र में अपने कर्तव्यों को समझने लगे थे।

जीजाबाई की मृत्यु – जीजाबाई अपने आप में एक बेहद प्रभावी और बुद्धिमान महिला थी। उन्होंने अपने हाथों से मराठा साम्राज्य को स्थापित किया था।उन्होंने अपने पूरे जीवन को मराठा साम्राज्य की नींव रखने और उसको मजबूती देने के लिए बहुत ज्यादा योगदान दिया था। जीजाबाई की मृत्यु 17 जून 1674 को पचाड़ (मराठा साम्राज्य–महाराष्ट्र) में हुई थी। जीजाबाई की मृत्यु के समय उनकी उम्र 76 वर्ष थी। उनकी मृत्यु से 10 साल पहले 1664 को उनके पति शाह जी का भी देहान्त हो गया था। जीजाबाई की मृत्यु के बारह दिन पहले ही उनके बेटे शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक हुआ था।

7. संभाजी महाराज (14 मई 1657 – 11 मार्च 1689)

जीवन परिचय और शिक्षा – संभाजी महाराज का जन्म 14 मई 1657 को पुरंदर किले में हुआ था। संभा जी के 2 वर्ष के होने तक इनकी माता साईबाई का देहान्त हो गया था। इसलिए संभा जी का पालन–पोषण उनकी दादी जीजाबाई ने किया था। संभा जी छत्रपति शिवाजी महाराज के पुत्र थे। संभा जी महाराज (राजे) के परिवार में पिता शिवाजी और माता साई बाई के अलावा दादा शाहजी राजे, दादी जीजाबाई और भाई–बहन थे। शिवाजी के तीन पत्नियाँ थीं– साईबाई, सोयराबाई और पुतलाबाई। संभा जी के एक और भाई राजाराम भी थे, जो कि सोयराबाई के पुत्र थे। इसके अलावा संभा जी के छः बहनें थी। संभा जी का विवाह येसूबाई से हुआ था और पुत्र का नाम छत्रपति साहू था। संभा जी की सौतेली माता सोयराबाई अपने पुत्र राजाराम को शिवाजी का उत्तराधिकारी बनवाना चाहती थी, इसी कारण संभा जी और छत्रपति शिवाजी के बीच सम्बंध अच्छे नहीं चल रहे थे। संभा जी ने कई मौकों पर अपनी बहादुरी भी दिखाई। परन्तु शिवाजी और परिवार को संभा जी पर विश्वास नहीं हो पा रहा था। ऐसे में एक बार शिवाजी ने संभा जी को सजा भी दी, लेकिन संभा जी वहाँ से भाग निकले और मुगलों से जाकर मिल गए। संभा जी ने बाद में जब मुगलों की हिन्दुओं के प्रति नफरत देखी तो उन्होंने मुगलों का साथ छोड़ दिया और शिवाजी के पास वापिस लौट आये। संभा जी उग्र और विद्रोही स्वभाव के थे, परन्तु जब वे कवि कलश के सम्पर्क में आये तो उनकी साहित्य की तरफ रूचि बढ़ने लगी।

उन्होंने संस्कृत भी सीखी। संभा जी ने अपने पिता शिवाजी के सम्मान में संस्कृत में बुधाचरित्र भी लिखा। इसके अलावा संभा जी ने संस्कृत का उपयोग करते हुए श्रंगारिका भी लिखा था।

संभा जी महाराज ने अपना पहला युद्ध 16 साल की उम्र में लड़ा था और उस युद्ध में विजय भी हासिल की थी। संभा जी ने यह युद्ध 7 किलो की तलवार से लड़ा था। जब शिवाजी का देहान्त हुआ तो मराठों को कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा, उस समय औरंगजेब इनका सबसे बड़ा दुश्मन था। उसको लगा कि अब शिवाजी के बाद उसका बेटा उसके सामने ज्यादा समय तक नहीं रह सकता। परन्तु संभा जी अपने सबसे बड़े दुश्मन औरंगजेब को तहस–नहस करने के लिए निकल पडा। उसी समय 1680 में औरंगजेब दक्षिण पठार की ओर से आया और उसके साथ 50 हजार सेना और 4 लाख जानवर थे। इसके बाद 1682 में रामसेई दुर्ग को मुगलों ने लगभग 5 महीने तक घेरने की कोशिश की। परन्तु 1687 तक मुगलों की सेना के आगे मराठा सैनिक कमजोर पडने लग गये थे। इस बीच 1689 में संभा जी संघमेश्वर में मुगलों के हाथ लग गये।

औरंगजेब का संभा जी पर अत्याचार और मृत्यु – 1689 तक स्थितियाँ बदल चुकी थीं। मराठा राज संगमेश्वर में शत्रुओं के आने से अनभिज्ञ था। ऐसे में मुकर्राब खान के अचानक आक्रमण से मुगल सेना महल तक पहुँच गयी और संभा जी के साथ कवि कलश को भी बन्दी बना लिया। औरंगजेब ने इन दोनों को कारागार में डाल दिया और उन्हें इस्लाम अपनाने के लिए विवश किया गया। मराठा सूत्रों के अनुसार कैदियों को चैन से जकड़कर औरंगजेब के दरबार तक ले जाया गया। औरंगजेब संभा जी को देखकर सिहासन से नीचे उतरकर आया और उसने कहा कि मराठाओं का आतंक कुछ ज्यादा ही होने लगा था, और आज शिवाजी का पुत्र मेरे सामने खड़ा है यह हमारी बहुत बड़ी उपलब्धि है। ऐसा कहकर औरंगजेब ने अल्लाह को याद करने के लिए अपने घुटने टेके। कवि कलश उस समय चैनों से बंधे हुए एक तरफ खड़े थे, उन्होंने संभा जी की ओर देखकर कहा कि– हे मराठा राजे देखिये आलमगीर खुद अपने सिंहासन से उठकर आपके सामने नतमस्तक होने आये है। इससे औरंगजेब आग बगूला हो गया और उसने उन दोनों को तहखाने में डालने का आदेश दिया।

मुगल नायकों ने संभा जी को सुझाव दिया कि यदि वे अपना पूरा राज्य और सभी किले औरंगजेब को सौंप दे, तो औरंगजेब संभा जी की जान बख्श देंगे। संभा जी ने इस बात से मना कर दिया। औरंगजेब ने संभा जी के पास एक संदेश और भेजा कि यदि वह इस्लाम कबूल कर ले तो उन्हें नयी जिन्दगी दी जाएगी, लेकिन यह भी संभा जी ने कबूल नहीं किया। फिर संभा जी और कवि

कलश पर मुगलों ने बहुत ही अत्याचार किये। दोनों को कठोर यातनाएं देने के बाद भी घंटी लगी टोपी पहनाकर हाथ में झुनझुना पकड़ा कर ऊंटों से बांध कर तुलापुर के बाजार में चारों तरफ घसीटा गया। इन तरीकों से औरंगजेब ने उन पर काफी अत्याचार और अपमान किया।

इस्लाम नहीं कबूलने से औरंगजेब बहुत गुस्सा था और उसने संभा जी के घावों पर नमक छिड़कने का आदेश दे दिया। फिर औरंगजेब ने उनकी जीभ को काटकर कुत्तों को खिलाने का आदेश दे दिया। उसके बाद उनकी आंखे निकाल दी गई और उनके हाथ भी काट दिए गये। संभा जी के हाथ काटने के दो सप्ताह बाद 11 मार्च 1689 को उनका सिर काट दिया गया। कुछ लोगों के मुताबिक उनकी लाश के टुकडों को तुलापुर की भीमा नदी में फेंक दिया गया। वहाँ से उन्हें कुछ लोगों ने निकाला और उनके जिस्म को सी कर उनका अंतिम संस्कार कर दिया।

8. अहिल्याबाई होलकर (31 मई 1725 – 13 अगस्त 1795)

जीवन परिचय – अहिल्याबाई होलकर का जन्म महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले के चौड़ी नामक गांव में एक सामान्य किसान मनकोजी शिंदे के परिवार में 31 मई 1725 को हुआ था। सादगी का जीवन व्यतीत करने वाले मनकोजी की अहिल्याबाई इकलौती पुत्री थी। अहिल्याबाई बचपन के समय में बहुत ही सीधी–साधी और सरल स्वभाव की कन्या थी। उस समय महिलाएं स्कूल नहीं जाती थी लेकिन अहिल्याबाई के पिता ने उन्हें लिखने–पढ़ने लायक पढ़ाया।

अहिल्याबाई का विवाह इन्दौर राज्य के संस्थापक महाराज मल्हारराव होल्कर के पुत्र खंडेराव से हुआ था। सन् 1745 में अहिल्याबाई के पुत्र हुआ और तीन वर्ष बाद एक कन्या हुई। पुत्र का नाम मालेराव और कन्या का नाम मुक्ताबाई रखा।

अहिल्याबाई होलकर का जीवन काफी सुखमय व्यतीत हो रहा था, लेकिन 1754 में उनके पति खांडेराव होलकर कुम्भार के युद्ध के दौरान वीरगति को प्राप्त हो गये। तब अहिल्याबाई की उम्र 21 वर्ष की थी और विधवा हो गई। उस समय की प्रथा के अनुसार पति की मौत के बाद पत्नी को सती होना पड़ता था। अहिल्याबाई ने इस प्रथा का विरोध किया और सती होने से इंकार कर दिया। इस निर्णय में उनके ससुर मल्हार राव खांडेकर भी उनके साथ थे। इसके बाद अहिल्याबाई ने फिर से अपने राज्य के प्रति सोचते हुए आगे बढ़ी। परन्तु दुःख और परेशानियों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। वर्ष 1766 में उनके ससुर और वर्ष 1767 में उनके बेटे मालेराव की मृत्यु हो गई। इन दोनों की मृत्यु के बाद

अहिल्याबाई अकेली रह गई थी और राज्य का सारा कार्यभार उनके ऊपर आ गया था।

योगदान – अहिल्याबाई किसी बड़े भारी राज्य की रानी नहीं थी, बल्कि एक छोटे भू–भाग पर उनका राज्य कायम था, इसके बावजूद जनकल्याण के लिए उन्होंने बहुत कार्य किए। उसने अपने राज्य में और सीमाओं के बाहर भारत के प्रसिद्ध तीर्थों और स्थानों में मंदिर बनवाए, घाट बनवाए, कुँए और बावड़ियों का निर्माण कराया। अहिल्याबाई ने इंदौर को एक छोटे से गाँव से खूबसूरत शहर में बनाया। उन्होंने कई घाट, मंदिर, तालाब, कुंए और विश्राम गृह भी बनवाए। इसके अतिरिक्त उन्होंने साहित्यकार कलाकार और गायकों को भी बढ़ावा दिया। अहिल्याबाई होलकर ने अपने राज्य की रक्षा करने के लिए महिला सैन्य टुकड़ियाँ बनवायी। इन टुकड़ियों में ऐसे प्रशिक्षित सैनिक थे जिन्हें यूरोप और फ्रांसीसी शैली में प्रशिक्षण प्राप्त करवाया गया था।

अहिल्याबाई होलकर ने मरते दम तक लोगों के न्याय के लिए काम किया, इसलिए लोगों ने इन्हें देवी ही समझ लिया था। उस समय जब चारों ओर गरीब और निस्सहाय लोगों पर अत्याचार हो रहे थे, किसानों, मजदूरों पर जमींदार द्वारा शोषण हो रहा था। ऐसी स्थिति में अहिल्याबाई ने उन लोगों के बारे में सोचा और उनकी भलाई के लिए अनेकों कार्य भी किये।

मृत्यु – अहिल्याबाई होलकर की मृत्यु 70 वर्ष की उम्र में 13 अगस्त सन् 1795 ईसवी को इंदौर में हुई थी। इसके बाद विश्वसनीय सेना प्रमुख तुकोजीराव होल्कर ने शासन की बागडोर संभाली। आज भी उनको सभी अपार सम्मान के साथ याद करते हैं।

9. गुरु घासीदास बाबा (18 दिसम्बर 1756 – ..... 1850)

जीवन परिचय – गुरु घासीदास बाबा का जन्म छत्तीसगढ़ की बलौदा बाजार तहसील के गिरौदपुरी ग्राम में 18 दिसम्बर 1756 को एक गरीब परिवार में हुआ था। इनकी माता का नाम अमरौतिन और पिता का नाम मंहगूदास था। इनकी पत्नी का नाम सफुरा और बच्चों के नाम सहोद्रा, बालकदास, अमरदास था। बचपन से ही गुरुघासीदास कुशाग्र एंव जिज्ञासु बुद्धि के थे। उस समय छत्तीसगढ़ के शोषित वंचित पीडित लोगों का जीवन बड़ा ही दुःखमय था। मानव–मानव में छुआछूत अवर्ण–स्वर्ण, ऊंच–नीच का भेदभाव व्याप्त था। मंदिरों में धर्म–कर्म के नाम पर नरबलि और पशुबलि की परम्परा प्रचलित थी। मंदिर और मठ अनाचार का केन्द्र बने हुए थे। नारी जाति के प्रति शोषण का भाव मंदिरों में भी देखने को मिलता था। गुरु घासीदास ने ज्ञान की प्राप्ति के लिए छत्तीसगढ़

के रायगढ़ जिले के सारगढ़ तहसील में बिलासपुर रोड़ में स्थित एक पेड़ के नीचे तपस्या करते हुए ज्ञान प्राप्त हुआ था। जहाँ आज गुरु घासीदास पुष्प वाटिका की स्थापना की गई है।

प्रचार–प्रसार कार्य – गुरु घासीदास ने बताया कि ईश्वर निर्गुण और निराकार है, जिसकी कोई मूर्ति नहीं है। ईश्वर की धारणा करना मानव का स्वाभाविक गुण है। गुरु घासीदास ने सतनाम धर्म का प्रचार–प्रसार किया और सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। गुरु घासीदास ने भाई चारे और मिल जुल कर समाज में रहने का संदेश दिया। समाज में छुआछूत, भेदभाव, ऊँचनीच, झूठ और कपट को समाप्त करने के लिए उन्होंने बहुत संघर्ष किया। उन्होंने समाज में व्याप्त जातिगत विषमताओं को नकारा। उन्होंने ब्राह्मणों के प्रभुत्व को नकारा और कई वर्णों में बाटने वाली जाति व्यवस्था का विरोध किया। गुरु घासीदास मानवता के साथ पशुओं से भी प्रेम करने की सीख देते थे। वे उन पर क्रूरता पूर्वक व्यवहार करने के खिलाफ थे। गुरु घासीदास के संदेशों और उनकी जीवनी का प्रचार पंथी गीत व नृत्यों के जरिए व्यापक रूप से हुआ। पंथी नृत्य छत्तीसगढ़ का लोक नृत्य इस राज्य के महत्वपूर्ण नृत्यों में से एक है।

समाज सुधार कार्य – गुरु घासीदास ने समाज में फैली कुप्रथाओं का बचपन से ही विरोध किया। उन्होंने समाज में व्याप्त छुआछूत की भावना के विरूद्ध मनखे–मनखे एक समान का संदेश दिया। गुरु घासीदास ने विशेष रूप से छत्तीसगढ़ राज्य के लोगों के लिए सतनाम का प्रचार किया। इन्होंने छत्तीसगढ़ में सतनामी सम्प्रदाय की स्थापना की थी इसलिए उन्हें ''सतनाम पंथ'' का संस्थापक माना जाता है। उन्होंने सतनाम अर्थात सत्य से लोगों को साक्षात्कार कराया और सतनाम का प्रचार किया। उन्होंने सत्य के प्रतीक के रूप में ''जैतरबाम'' को दर्शाया यह एक सफेद रंग किया हुआ लकड़ी का ढेर होता है जिसके ऊपर एक सफेद झंडा फहराया है। इसके सफेद रंग को ही सत्य का प्रतीक माना जाता है। गुरु घासीदास की सात शिक्षाएं नशा नहीं करना, जीव हत्या नहीं करना, सतनाम पर विश्वास रखना, मांसाहार नहीं करना, व्यभिचार नहीं करना, चोरी जुए से दूर रहना, जाति पाति में नहीं पड़ना। गुरु घासीदास ने जाति विहीन समाज के लिए काफी संघर्ष किए। उन्होंने शोषित वंचितों एवं जातीय अपमान को नजदीक से देखा था। उसको तोड़ने के लिए उन्होंने समता मूलक समाज की स्थापना की, जहाँ छोटे–बड़े, ऊँच–नीच का भेद ना हो। गुरु घासीदास नारी जाति का बड़ा आदर करते थे। वो मानते थे नारी पवित्रता की देवी है नारी ही स्त्री–पुरूष की जननी है। उन्होंने बाल विवाह, सती प्रथा का विरोध किया तथा विधवा विवाह सम्पन्न कराया। समाज में स्त्री को हर क्षेत्र में समानता का अधिकार दिया। गुरु घासीदास की मृत्यु 1850 में बताई जाती है। गिरौदपुरी के जंगल में छतरी की पहाड़ी पर उनकी समाधि बनाई गई।

10. महात्मा ज्योतिबा फुले (11 अप्रैल 1827 – 28 नवम्बर 1890)

जीवन परिचय – महात्मा जोतिराव गोविंदराव फुले भारतीय समाज सुधारक, समाज प्रबोधक, विचारक, समाज सेवी, लेखक, दार्शनिक तथा क्रांतिकारी कार्यकर्ता रहे। इन्हें महात्मा फुले व ज्योतिबा फुले के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने महाराष्ट्र में सत्य शोधक समाज नामक संस्था का गठन किया था।

महात्मा ज्योतिबा फुले का जन्म 11 अप्रैल 1827 ई. में पुणे में हुआ था। एक वर्ष की अवस्था में ही इनकी माता का निधन हो गया था। इनका परिवार कई पीढ़ी पहले सतारा (महाराष्ट्र) से पुणे आकर फूलों के गजरे आदि बनाने का काम करने लगा था। इसलिए माली के काम में लगे ये लोग फुले के नाम से जाने जाते थे। इन्होंने प्रारम्भ में मराठी भाषा में शिक्षा प्राप्त की। परन्तु बाद में जाति भेदभाव के कारण बीच में ही इनकी पढ़ाई छूट गयी। बाद में 21 वर्ष की अवस्था में इन्होंने अंग्रेजी भाषा में मात्र 7 वीं कक्षा की पढ़ाई पूरी की।

इनका विवाह सन् 1840 ई. में सावित्री बाई फुले से हुआ। जो बाद में स्वयं एक प्रसिद्ध स्वयंसेवी महिला के रूप में सामने आयी। स्त्री शिक्षा और वंचितों को शिक्षा का अधिकार दिलाने में दोनों पति–पत्नी ने साथ मिलकर कार्य किया।

सामाजिक कार्य – शिक्षा के क्षेत्र में कुछ करने के उद्देश्य से इन्होंने सन् 1848 में एक स्कूल खोला। इसके द्वारा स्त्री शिक्षा और उनकी दशा सुधारने के क्षेत्र में इनका यह पहला कदम था। परन्तु इसके बाद एक और समस्या सामने आयी कि अपने स्कूल में लड़कियों को पढ़ाने के लिए कोई शिक्षिका नहीं मिली। तब इन्होंने स्वयं यह कार्य किया और पत्नी सावित्री बाई फुले को इस काबिल बनाया कि वो स्कूल में बच्चों का पढ़ा सके। उच्च वर्ग के लोगों ने शुरू से ही उनके इस काम में बाधा डाली थी लेकिन उन्होंने अपने कदम पीछे नहीं हटाए थे। ज्योतिबा फुले के इस प्रयास से सारा उच्च वर्ग उनके खिलाफ खड़ा हो गया। वे लोग ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले को तरह–तरह से अपमानित करने लगे। यह विरोध इतना बढ़ गया कि उन्हें अपने पिता का घर भी छोड़ना पड़ा। लेकिन इतना सब होने के बाद भी उन्होंने अपने मनोबल को कम नहीं होने दिया। इसके बाद उन्होंने एक के बाद एक तीन बालिका स्कूल खोल दिए।

इन्होंने वंचितो व महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक कार्य किये। 24 सितम्बर 1873 ई. को इन्होंने पुणे महाराष्ट्र में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। इन्होंने समाज के सभी वर्गों के लिए शिक्षा प्रदान किये जाने का समर्थन किया। इन्होंने समाज में प्रचलित जाति आधारित विभाजन (जाति व्यवस्था) का सदैव घोर विरोध किया। इन्होंने जाति प्रथा को समाप्त करने के उद्देश्य से बिना

पंडित के ही विवाह संस्कार प्रारम्भ किया। इसके लिए बॉम्बे हाई कोर्ट से मान्यता भी प्राप्त की। इन्होंने बाल विवाह और सती प्रथा का प्रबल विरोध किया, विधवाओं के विवाह कराने का अभियान चलाया। इन्होंने 1871 में सावित्री बाई फुले को संयोजक बनाकर पूना में विधवा आश्रम खोला। सावित्री बाई फुले और ज्योतिबा फुले की कोई भी संतान नहीं थी। यही वजह है कि उन्होंने एक ऐसे बच्चे को गोद लिया जो एक विधवा महिला की संतान थी। आगे चलकर यही बच्चा अच्छी पढ़ाई लिखाई करके डॉक्टर बना और इसने भी ज्योतिबा फुले और सावित्री फुले के मिशन को आगे बढ़ाया।

महात्मा ज्योतिबा फुले का साहित्य – साल 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना करने के बाद इसी साल में इनकी गुलामगिरी नाम की किताब प्रकाशित हुई थी। इन्होंने इस पुस्तक के अलावा और भी पुस्तकों की रचना की थी, जैसे तृतीय रत्न, छत्रपति शिवाजी, राजा भोसला का पखड़ा, अछूतों की कैफियत और किसान का कोड़ा इत्यादि। इन्होंने पिछड़े वर्ग तथा किसानों की आवाज को उभारने के लिए समाचार पत्र का भी प्रकाशन किया था। जनवरी 1877 में एक साप्ताहिक समाचार पत्र दीनबंधु समाचार पत्र का प्रकाशन किया था। इन्होंने किसानों की मांगों को लेकर संघर्ष किया था।

ज्योतिबा फुले का ''सत्यशोधक समाज'' की स्थापना करने के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि ऐसे लोगों को न्याय प्राप्त हो सके जो निर्बल और वंचित वर्ग से सम्बंध रखते हैं। इनकी समाज सेवा को देखते हुए इन्हें ''महात्मा'' की उपाधि मुम्बई की एक सभा में 1888 में प्राप्त हुई।

महात्मा ज्योतिबा फुले की मृत्यु – अपने जीवन के अंतिम क्षणों में महात्मा ज्योतिबा फुले को लकवे का अटैक आ गया, जिसके कारण उनके शरीर में काफी कमजोरी आ गयी थी। जीवन के 63 वर्ष जीने के बाद 28 नवम्बर 1890 को पुणे में उनका निधन हो गया।

11. झलकारी बाई (22 नवम्बर 1830 – 4 अप्रैल 1857)

जीवन परिचय – झलकारी बाई का जन्म 22 नवम्बर 1830 को झांसी के पास भोजला गांव में एक निर्धन कोली परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सदोवर सिंह और माता का नाम जमुना देवी था। जब झलकारी बाई बहुत छोटी थी तब उनकी माँ की मृत्यु हो गई थी, उसके बाद इनके पिता ने उन्हें एक लडके की तरह पाला था। झलकारी बाई घर के काम के अलावा पशुओं का रख–रखाव और जंगल से लकड़ी इक्ट्ठा करने का काम भी करती थी। एक बार जंगल में उसकी मुठभेड एक तेंदुए से हो गई थी, झलकारी बाई ने अपनी

कुल्हाड़ी से उस तेंदुए को मार डाला था। इसी प्रकार एक अवसर पर गांव के एक व्यवसायी पर डकैतों ने हमला कर दिया था तब झलकारी बाई ने अपनी बहादुरी से उन्हें पीछे हटने को मजबूर कर दिया था। झलकारी बाई की इस बहादुरी से खुश होकर गांव वालों ने इनका विवाह रानी लक्ष्मीबाई की सेना के एक सैनिक पूरन कोरी से करवा दिया। पूरन भी बहुत बहादुर था, पूरी सेना उनकी बहादुरी का लोहा मानती थी। झाँसी के किले में एक बार पूजा के अवसर पर झलकारी बाई भी अन्य महिलाओं के साथ महारानी को सम्मान देने के लिए वहाँ गयी। झलकारी बाई बिल्कुल रानी लक्ष्मीबाई की तरह दिखती थी। वहाँ आयी अन्य औरतों से झलकारी बाई की बहादुरी के किस्से सुनकर रानी लक्ष्मीबाई बहुत प्रभावित हुई। रानी ने झलकारी बाई को दूर्गा सेना में शामिल करने का आदेश दिया। झलकारी बाई ने यहाँ अन्य महिलाओं के साथ बन्दूक चलाना, तोप चलाना, घुडसवारी और तलवार बाजी का प्रशिक्षण लिया। यह वह समय था जब झांसी की सेना को किसी भी ब्रिटिश दुस्साहस का सामना करने के लिए मजबूत बनाया जा रहा था।

स्वाधीनता संग्राम में भूमिका – लार्ड डलहौजी की नीति झांसी राज्य को हड़पने की थी। इसीलिए ब्रिटिशों ने निःसंतान लक्ष्मीबाई को उनका उत्तराधिकारी गोद लेने की अनुमति नहीं दी, क्योंकि वे ऐसा करके राज्य को अपने नियंत्रण में लाना चाहते थे। इधर ब्रिटिश की इस कार्यवाही का विरोध रानी की सारी सेना, उसके सेनानायक और झांसी के लोग रानी के साथ लामबन्द हो गये और आत्मसमर्पण करने के बजाय ब्रिटिशों के खिलाफ हथियार उठाने का संकल्प लिया। अप्रैल 1857 के दौरान रानी लक्ष्मीबाई ने झांसी के किले के भीतर से अपनी सेना को नेतृत्व किया और ब्रिटिश व उनके स्थानीय सहयोगियों द्वारा किये गये हमले को नाकाम कर दिया। उसी समय रानी के एक सेना नायक दूल्हेराव ने उसे धोखा दिया और किले का एक संरक्षित द्वार ब्रिटिश सेना के लिए खोल दिया। जब किले को घिरते देखा तो रानी के सेनापतियों और झलकारी बाई ने उन्हें कुछ सैनिकों के साथ किला छोड़कर भागने की सलाह दी। इस प्रकार रानी अपने घोड़े पर बैठकर अपने कुछ विश्वस्त सैनिकों के साथ झांसी से दूर निकल गई। उसी दौरान झलकारी बाई का पति पूरन किले की रक्षा करते हुए शहीद हो गया लेकिन झलकारी बाई ने बजाय अपने पति की मृत्यु का शोक मनाने के, ब्रिटिशों को धोखा देने की एक योजना बनाई। झलकारी बाई ने लक्ष्मी बाई की तरह कपड़े पहने और झांसी की सेना की कमान अपने हाथ में ले ली। जिसके बाद वह किले के बाहर निकल ब्रिटिश जनरल हयूग रोज के शिविर में उससे मिलने पहुँची। ब्रिटिश शिविर में पहुंचने पर उसने चिल्लाकर कहा कि– वो जनरल हयूग रोज से मिलना चाहती है। यह देख

रोज और उसके सैनिक प्रसन्न थे कि न सिर्फ उन्होंने झांसी पर कब्जा कर लिया है बल्कि जीवित रानी भी उनके कब्जे में है। झलकारी बाई ने अपनी इस रणनीति से अंग्रेजों को उलझाए रखा जिससे रानी लक्ष्मीबाई को ताकत जुटाने के लिए और समय मिल जाये। जनरल ह्यूग रोज ने झलकारी बाई से पूछा कि उसके साथ क्या किया जाना चाहिए? तो झलकारी बाई ने दृढ़ता के साथ कहा– चाहे मुझे फाँसी दे दो। झलकारी बाई को भारी सुरक्षा के साथ शिविर के एक तंबू में कैद किया गया, परन्तु मौका देखते ही वह रात में उनकी कैद से भाग गई। अगले दिन 4 अप्रैल 1857 को जनरल ह्यूग रोज ने किले में एक भयंकर हमला किया, जहाँ उन्हें फिर झलकारी बाई से भिड़ना पड़ा। उसके बाद हमलें में एक तोप के गोले से झलकारी बाई की मृत्यु हो गई।

12. सावित्री बाई फुले (3 जनवरी 1831 – 10 मार्च 1897)

जीवन परिचय – सावित्री बाई फुले का जन्म 3 जनवरी 1831 को महाराष्ट्र के सतारा जिले के नयागांव में हुआ था। इनके पिता का नाम खन्दोजी नैवेसे और माता जी का नाम लक्ष्मी था। सावित्री बाई फुले का विवाह 1840 में 9 वर्ष की आयु में ज्योतिराव फुले से हुआ था। सावित्री बाई फुले शिक्षक होने के साथ भारत के नारी मुक्ति आंदोलन की पहली नेता, समाज सुधारक और मराठी कवयित्री भी थी। सावित्री बाई फुले भारत के पहले बालिका विद्यालय की पहली प्रधानाचार्य और पहले किसान स्कूल की संस्थापक थी। इन्होंने 1864 में बेसहारा स्त्रियों के लिए एक आश्रय स्थल की स्थापना की और सभी वर्गों की समानता के लिए संघर्ष करने वाले ज्योतिबा फुले के धर्म सुधारक संस्थान सत्यशोधक समाज का विकास करने में अहम भूमिका निभाई। वंचित–शोषित वर्गों को गांव के सार्वजनिक कुंए से पानी पीने की मनाही थी ज्योतिराव और सावित्री बाई ने उनके पानी पीने के लिए अपने घर के पिछवाडे एक कुआ खोदा जिसका लोगों ने आक्रोश भी उत्पन्न किया।

सावित्री बाई फुले की शिक्षा – जब सावित्री बाई फुले का विवाह हुआ उस समय तक उनकी कोई स्कूली शिक्षा नहीं हुई थी लेकिन शादी के बाद समय मिलने पर उनके पति ज्योतिबा फुले ने उन्हें पढ़ाया करते थे। इसके बाद ज्योतिबा फुले ने सावित्री बाई फुले का एडमिशन एक प्रशिक्षण विद्यालय में कराया। लेकिन समाज के विरोध का सामना करते हुए उन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की। सावित्री बाई फुले को दकियानुसी लोग पंसद नहीं करते थे। उनके स्कूल जाने से लेकर और उनके द्वारा शुरू किये गये स्कूलों का लोगों ने बहुत विरोध किया था।

सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ – सावित्री बाई फुले ने 19वीं सदी में छुआ–छूत, सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा विवाह निषेध जैसी कुरीतियों के विरूद्ध अपने पति के साथ मिलकर काम किया। उन्होंने अपने पति ज्योतिबा फुले के साथ मिलकर 18 स्कूल खोले थे इन दोनों ने मिलकर बाल हत्या प्रतिबंधक गृह नामक केयर सेंटर भी खोला था। सावित्री बाई ने आत्महत्या करने जाती हुई एक विधवा ब्राह्मण महिला काशीबाई की डिलिवरी अपने घर करवा करके उसके बच्चे यशवंत को अपने दत्तक पुत्र के रूप में गोद लिया। इसका फुले परिवार में तीखा विरोध हुआ तो दंम्पति ने अपने परिवार से सम्बंध समाप्त कर लिया। दत्तक पुत्र यशवंत को पाल पोस कर इन्होंने डॉक्टर बनाया।

सावित्री बाई फुले के पति ज्योतिबा फुले की मृत्यु सन् 1890 में हुई थी, तब सावित्री बाई ने उनके अधूरे कामों को पूरा करने के लिए संकल्प लिया। महिला अधिकार के लिए संघर्ष करने वाली सावित्री बाई ने विधवाओं के लिए एक केन्द्र की स्थापना की और उनको पुनर्विवाह के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने शोषितों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। वर्ष 1897 में प्लेग फैलने के दौरान उन्होंने पुणे में अपने दत्तक पुत्र के साथ मिलकर एक अस्पताल खोला और अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों का इलाज किया। इन्होंने महिला अधिकारों से सम्बंधित मुद्दों और उनकी समस्याओं के समाधान के लिए और जागरूकता बढ़ाने के लिए महिला सेवा मंडल की स्थापना की थी।

सावित्री बाई फुले ने कवियत्री के रूप में दो काव्य पुस्तकें–काव्य फुले और बावनकशी भी लिखी। इनको मराठी की आदि कवियत्री माना जाता है।

सावित्री बाई फुले का निधन – सन् 1897 में पुणे में प्लेग फैलने के दौरान सावित्री बाई दिन–रात मरीजों की सेवा में लगी थी। उन्होंने प्लेग से पीड़ित गरीब बच्चों के लिए कैंप लगाया था। प्लेग से पीड़ित एक बच्चे पांडुरंग गायकवाड़ को लेकर जब वह जा रही थी, तो उन्हें भी प्लेग ने जकड़ लिया। इस प्रकार 10 मार्च 1897 को सावित्री बाई का भी निधन हो गया। सावित्री बाई जिदंगी के आखिरी पलों तक समाज सेवा और राष्ट्रमाता मानवता को स्थापित करने के लिए संघर्ष करती रहीं।

13. रानी अवंती बाई लोधी (16 अगस्त 1831 – 20 मार्च 1858)

जीवन परिचय – अवंती बाई का जन्म पिछड़े वर्ग में 16 अगस्त 1831 को मडकेहनी जिला सिवनी, मध्य प्रदेश में हुआ था। अवंती बाई के पिता का नाम राव जुझार सिंह जो मनकेहनी के जमींदार थे। अवंती बाई को बचपन से ही घुड़सवारी और तलवारबाजी का शौक था। अवंती बाई की घुड़सवारी और

तलवारबाजी को देखकर लोग हैरान रह जाते थे। अवंती बाई जैसे–जैसे बड़ी होती गई वैसे–वैसे उनकी वीरता के किस्से आस–पास के क्षेत्र में फैलने लगे थे। इनकी शिक्षा–दीक्षा भी मनकेहनी ग्राम में ही हुई। अवंती बाई लोधी के पिता जुझार सिंह ने अपनी कन्या का रिश्ता सजातीय लोधी समाज के रामगढ़ जिला मण्डला के राजकुमार विक्रमादित्य सिंह से करने का निश्चय किया। इसके बाद जुझार सिंह की यह साहसी कन्या रामगढ़ रियासत की कुलवधु बनी। सन् 1850 में रामगढ़ रियासत के राजा लक्षमण सिंह की मृत्यु हो गई और राजकुमार विक्रमादित्य सिंह का रामगढ़ रियासत के रूप में राज तिलक किया गया, लेकिन कुछ सालों बाद राजा विक्रमादित्य सिंह अस्वस्थ रहने लगे। उनके दोनों पुत्र अमन सिंह और शेर सिंह अभी छोटे थे, अतः राज्य का सारा भार रानी अवंती बाई लोधी के कंधों पर आ गया। अवंती बाई लोधी ने झांसी की रानी की तरह ही अपने पति के अस्वस्थ होने पर ऐसी दशा में राज्य का कार्यभार संभालकर अपनी सुयोग्यता का परिचय दिया।

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की एक वीरांगना रानी अवंती बाई लोधी जिनका योगदान हमेशा याद किया जाता रहेगा। परन्तु इतिहासकारों ने उनकों कोई अहम स्थान न देकर नाइंसाफी की है। आज देश में बहुत से लोग हैं जो इनके बारे में जानते भी नहीं है लेकिन इनका योगदान भी 1857 के स्वाधीनता संग्राम की अग्रणी वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई से कम नहीं है। इतिहासकारों की पिछडे समाज विरोधी मानसिकता ने हमेशा से इनके बलिदान और 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में योगदान को नजर अंदाज किया है।

प्रशासन नीति – रानी अवंती बाई लोधी ने जब अपने राज्य का कार्यभार सम्भाला हुआ था, उस समय लॉर्ड डलहौजी भारत में ब्रिटिश राज्य का गर्वनर जनरल था। लॉर्ड डलहौजी का प्रशासन चलाने का तरीका साम्राज्यवाद से प्रेरित था। उसके समय में राज्य विस्तार का काम अपने चरम पर था। भारत में लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीतियों के कारण और उसकी राज्य हड़प नीति की वजह से देश की रियासतों में हल्ला मचा हुआ था।

लॉर्ड डलहौजी की राज्य हड़प नीति के अंतर्गत जिस रियासत का कोई स्वाभाविक बालिग उत्तराधिकारी नहीं होता था। ब्रिटिश सरकार उसे अपने अधीन कर ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर लेती थी। इसके अलावा इस हड़प नीति के अंतर्गत लॉर्ड डलहौजी ने यह निर्णय लिया कि जिन भारतीय शासकों ने कम्पनी के साथ मित्रता की है अथवा जिनके राज्य ब्रिटिश सरकार के अधीन है और उन शासकों के यहाँ कोई पुत्र नहीं है तो ऐसे राज्य शासक बिना अंग्रेजी हुकूमत की आज्ञा के पुत्र गोद नहीं ले सकता। अपनी राज्य हड़प नीति के तहत लॉर्ड डलहौजी कानपुर, झांसी, नागपुर, सतारा, जैतपुर, संबलपुर, उदयपुर,

करौली आदि रियासतों को हड़प चुका था। रामगढ़ की इस राजनीतिक स्थिति का पता जब अंग्रेजी सरकार को लगा तो उन्होंने रामगढ़ रियासत को कोर्ट ऑफ वार्डस के अधीन कर लिया। इस घटना से रानी अवंती बाई लोधी काफी दुःखी हुई, परन्तु इस अपमान का घूंट पीकर रह गई और उचित अवसर की तलाश करने लगी।

मई 1857 में अस्वस्थता के कारण राजा विक्रमादित्य सिंह का स्वर्गवास हो गया। सन् 1857 में जब देश में स्वतंत्रता संग्राम छिड़ा तो क्रांतिकारियों का संदेश रामगढ़ भी पहुँचा। रानी ने भी अपनी ओर से सभी रियासतों के राजाओं को क्रांति का संदेश भेजा और देश की रक्षा करने की सौंगध खायी। सभी देश भक्त राजाओं और जमींदारों ने रानी के साहस और शौर्य की बड़ी सराहना की और उनकी योजनानुसार अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का झन्डा खडा कर दिया।

रानी अवंती बाई लोधी मध्य भारत की क्रांति की प्रमुख शासक के रूप में उभरी। रानी के विद्रोह की खबर जबलपुर के कमिशनर और मण्डला के डिप्टी कलेक्टर को मिली तो वे आग बबूला हो गये। रानी से इसका बदला लेने के लिए कमिशनर ने अपनी सेना को पुर्नगठित कर रामगढ़ के किले पर हमला बोल दिया। वहाँ की स्थिति को भांपते हुए रानी ने रामगढ़ के किले को छोड़कर देवहारगढ़ की पहाड़ियों की तरफ प्रस्थान किया। रानी ने रामगढ़ छोड देने के बाद अंग्रेजी सेना ने रामगढ़ के किले को बुरी तरह ध्वस्त कर दिया। इसके बाद अंगेजी सेना रानी का पता लगाती हुई देवहारगढ़ की पहाडियों तक पहुँची और चारों तरफ से रानी की सेना पर धावा बोला। इस युद्ध में रानी की सेना के कई सैनिक मारे गये और रानी को खुद हाथ में गोली लगी और बन्दूक छुटकर गिर गयी। अपने आपको चारों ओर से घिरता देख वीरागंना अवंती बाई लोधी ने अपने अंगरक्षक से तलवार छीनकर स्वयं अपने शरीर में तलवार भोंक कर देश के लिए अपना बलिदान दे दिया। इस तरह रानी अवंतीबाई लोधी की 20 मार्च 1858 को मृत्यु हो गई।

14. फातिमा शेख (21 सितम्बर 1832 – 9 अक्टूबर 1900)

प्रारम्भिक जीवन – फातिमा शेख एक शिक्षिका और सामज सुधारक महिला थी, जिसका जन्म 21 सितम्बर 1832 को महाराष्ट्र के पुणे शहर में हुआ था। यह ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले की सहयोगी थी। जिन्होंने पिछड़ी, शोषित, मुस्लिम और बच्चों को शिक्षित करने का प्रयास किया।

फातिमा शेख मियां उस्मान शेख की बहन थी। उस्मान शेख ने ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले को अपने घर के परिसर में स्कूल चलाने की सहमति दी थी। सन् 1848 में उस्मान शेख और उसकी बहन फातिमा शेख के घर में यह स्कूल खोला गया था। फातिमा शेख ओर सावित्री बाई फुले ने मिलकर समाज में शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए काम किया और हर सम्भव तरीके से सावित्री बाई फुले का दृढ़ता से समर्थन किया। फातिमा शेख ने 1851 में मुम्बई में दो स्कूलों की स्थापना के लिए कार्य किया।

योगदान – आज से लगभग 150–200 साल पहले तक शिक्षा बहुसंख्यक लोगों तक नहीं पहुँच पाई थी। जबकि विश्व के अनेक देश आधुनिक शिक्षा में काफी आगे निकल चुके थे पर भारत में बहुसंख्यक लोग शिक्षा से वंचित थे। देश में बहुजनों के इस पतन का कारण शिक्षा का न होना ही है। बहुसंख्यक लोगों के घरों तक शिक्षा का प्रचार–प्रसार के लिए सावित्री बाई फुले और ज्योतिबा फुले ने अपने कदम बढाए। परन्तु उच्च वर्ग के लोगों को यह बिल्कुल पसंद नहीं था और इनका विरोध करने लगे। ज्योतिराव फिर भी अपना कार्य मजबूती से करते रहे ज्योतिराव जब नहीं माने तो लोगों ने उनके पिता पर दबाव बनाया। यह देखते हुए ज्योतिराव फुले को अपना घर छोड़ना पड़ा और अपने दोस्त उस्मान शेख पूना के गंज पेठ में उनके घर चले गये। उस्मान शेख ने उनको रहने के लिए अपना घर दिया। वहाँ1848 में इन्होंने एक स्कूल की शुरूआत की जिसमें उस्मान शेख और उनकी बहन फातिमा शेख ने भी शिक्षा के प्रति काफी रूचि दिखाई।

फातिमा शेख के जमाने में लडकियों की शिक्षा में असंख्य रूकावटें थीं। ऐसे जमाने में उन्होंने स्वयं शिक्षा प्राप्त की और दूसरों को लिखना पढ़ना सिखाया। फातिमा शेख शिक्षा देने वाली पहली मुस्लिम महिला थी लड़कियों की शिक्षा के लिए जो सेवाएं फातिमा शेख ने दी उसे भुलाया नहीं जा सकता। उनका घर–घर जाना लोगों को शिक्षा की आवश्यकता को समझाना और लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए उनके अभिभावकों की खुशामद करना फातिमा शेख की आदत बन गयी थी। आखिर उनकी मेहनत रंग लाने लगी लोगों के विचारों में परिवर्तन आया। वे अपने घरों की लड़कियों को स्कूल भेजने लगे और मुस्लिम लडकियाँ भी खुशी–खुशी स्कूल जाने लगीं। शिक्षा के महान कार्य में ज्योतिराव फुले एवं सावित्री बाई फुले को मौलिकता के साथ सहयोग देने वाली मानवतावादी शिक्षिका फातिमा शेख का नाम भी हमेशा लिया जाता रहेगा। इनकी मृत्यु 9 अक्टूबर सन् 1900 को हुई।

15. नारायण गुरु (20 अगस्त 1856 – 20 सितम्बर 1928)

जीवन परिचय – नारायण गुरु भारत के महान संत एवं समाज सुधारक थे। इनका जन्म 20 अगस्त 1856 को केरल में तिरूवांकर जिले के चेम्पर पंति गांव में हुआ था। इनका परिवार पिछड़े वर्ग में इझवा जाति से सम्बंध रखता है। इनका घर का नाम नानु था। इनके पिता गुरुकुल के आचार्य और संस्कृत के विद्वान थे। नारायण गुरु अपने माता–पिता की चार संतानों में अकेले पुत्र थे। अपने गांव में रहते हुए नारायण (नानू) ने संस्कृत की शिक्षा पाई और आयुर्वेद तथा ज्योतिष का भी अध्ययन किया। उनके इस अध्ययन का महत्व इस बात से है कि उस समय तिरूवांकर क्षेत्र में निम्न जातियों के लोगों को कोई भी अधिकार नहीं थे। परन्तु उसके बावजूद उन्होंने इन विषयों की अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली थी।

संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने के बाद कुछ समय तक उन्होंने अपने क्षेत्र में अध्यापक के रूप में काम किया। इसी दौरान उन्होंने कुछ भक्ति गीत भी लिखे। उसी समय उनके दिल में यह भावना उभरती रही कि सांसारिक बन्धनों में न पड़कर कुछ ऊपर उठ कर किया जाए। लगभग 25 वर्ष की अवस्था में वह अपने घर को छोड़कर किसी अज्ञात स्थान पर चले गये। कुछ वर्षों तक उन्होंने अय्यावु नाम तमिल साधक से योग की शिक्षा ली, फिर वह मरूत्व की पहाड़ियों में योग साधना करते रहे। वहाँ वे साधु के रूप में तटवर्ती गांव के मछुआरों के बीच घूम फिर कर अपने संदेशों का प्रचार करते रहे। लगभग 30 वर्ष के होते–होते योगी के रूप में उनकी ख्याति फैल गई। उस क्षेत्र की निम्न कही जाने वाली जातियों में वह समानता और भाई चारे का प्रचार करने लगे। वहाँ के इन लोगों के लिए उन्होंने एक शिव मंदिर बनवाया। इस मंदिर में पहली बार एक ऐसे व्यक्ति ने पूजा की जो पुजारी वर्ग का नहीं था। उनके प्रयासों के कारण ही निम्न वर्ग के लोगों और उच्च वर्ग के लोगों में समान व्यवहार की भावना जगने लगी।

समाज सुधार में योगदान – नारायण गुरु ने समाज में समानता की शुरूआत अपनी इझवा जाति से की थी। उस दौरान ऊंची जातियों के लोग इझवा लोगों से बुरा व्यवहार करते थे और इझवा लोग अपने से भी नीचली जातियों से अच्छा व्यवहार नहीं करते थे। नारायण गुरु ने लोगों को समझाया कि अपने से नीची जातियों को भी अपने समान समझे और उन्हें भी धार्मिक स्थलों में प्रवेश करने दे। नारायण गुरु का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि लोगों ने उनकी बातें माननी शुरू कर दी। इस तरह अरूविप्पुरम में एक ऐसी सामाजिक क्रांति का आगमन हुआ। जो उससे पहले दक्षिण भारत के और किसी

भाग में नहीं देखा गया था। सन् 1888 में नारायण गुरु अरूविप्पुरम गये, वहाँ उन्होंने ध्यान किया और नदी से एक चट्टान ली और इसे एक शिव मूर्ति के रूप में पवित्र किया, जिसे अब अरूविप्पुरम शिव मंदिर के रूप में जाना जाता है।

नारायण गुरु केवल एक समाज सुधारक ही नहीं थे, वह दार्शनिक भी और योगी भी थे। अपने आध्यात्मिक विचारों को उन्होंने पदबद्ध किया। उनके अधिकांश पद्य संस्कृत और मलयालम तथा कुछ तमिल में भी है।

नारायण गुरु की मृत्यु – 20 सितम्बर 1928 को 74 साल की आयु में परोपकारी संत नारायण गुरु की मृत्यु हो गयी। इस दिन को केरल में नारायण गुरु समाधि दिन के रूप में मनाया जाता है।

16. सयाजी राव गायकवाड़ (11 मार्च 1863 – 6 फरवरी 1939)

जीवन परिचय – सयाजी राव गायकवाड़ का जन्म 11 मार्च 1863 को नासिक जिले के कुल्वाने गांव में हुआ था। उनका मूल नाम गोपालराव था। इनके पिता काशीनाथ का बड़ौदा राजपरिवार से दूर का सम्बंध था। बड़ौदा के महाराज मल्हार राव गायकवाड़ की निःसंतान/बिना संतान मृत्यु के बाद उनकी विधवा पत्नी महारानी जमुना बाई ने गोपाल राव को 27 मई 1875 को गोद लिया था, और उनका नाम सयाजी राव गायकवाड़ रखा। महारानी ने अपने दत्तक पुत्र का राज्याभिषेक 18 वर्ष की आयु में 28 नवम्बर 1881 को कराया। सयाजी राव गायकवाड ने अपने कार्यकाल 1881 से 1939 के दौरान एक कर्तव्यतत्पर तथा पूरोगामी संस्थानिक के तौर अपनी अमिट छवि बनाई थी।

कार्य व्यवस्था – बड़ौदा के सयाजी राव गायकवाड़ ''तृतीय'' के रूप में काफी प्रसिद्ध रहे। उन्होंने अपने समय में बहुत बड़े सामाजिक और शैक्षिक सुधार किए। उनके शासनकाल के दौरान बड़ौदा विद्वानों और कलाकारों का एक केन्द्र बन गया था। उन्होंने बड़ौदा संग्राहलय और इसकी चित्रशाला का निर्माण भी करवाया, जिसमें उनके बेशकीमती आभूषणों का संग्रह प्रदर्शित है। महाराजा सयाजी राव विजया बैंक अब बैंक ऑफ बड़ौदा के संस्थापक भी थे। इन्होंने यह अच्छी तरह जाना कि शिक्षण और विज्ञान ही प्रगति और परिवर्तन के साधन है। इसलिए इन्होंने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, सुशासन, विधि न्याय, खेती, उद्योगों को मदद, सामाजिक धार्मिक सुधार, जाति धर्मो के बीच ऊँच–नीच को समाप्त करके समता, मानवता और सर्वधर्म सद्भाव के मार्ग को चुना था। इन्होंने अपनी कार्य व्यवस्था के दौरान सन् 1882 में वंचितो के लिए 18 पाठशालाएं खोली। सत्य शोधक समाज से और उनके कार्यकर्ताओं से उनका

गहरा नाता था। सन् 1885 में महाराज की भेंट पूना में ज्योतिबा राव फुले से हुई और महाराज उनके सत्य शोधक समाज के कार्यों से बहुत प्रभावित हुए। इन्होंने डॉ. भीमराव आम्बेडकर को विदेश पढ़ने जाने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की थी। महाराज सयाजी राव गायकवाड़ स्वतन्त्रता सेनानियों के समर्थक और प्रतिभाशाली लेखक भी रहे हैं। उनकी किताबें, भाषण, पत्र, आदेश और दैनंदिनी देश का अनमोल खजाना है।

महाराज सयाजी राव ने शुरूआत में 6 जनवरी 1880 को तंजौर की चिमनाबाई प्रथम से शादी की, जिनसे उन्हें एक बेटा और दो बेटियाँ हुई। उसके बाद पहली पत्नी की तपेदिक से मृत्यु हो गयी। सयाजी राव ने 28 दिसम्बर 1885 को देवास की एक महिला लक्ष्मीबाई मोहिते से फिर शादी कर ली जिनके साथ आखिर तक अपना जीवन बिताया। उनके कई बेटे और एक बेटी थी। 63 वर्षो के एक लम्बे और घटना पूर्ण शासन के बाद सयाजी राव गायकवाड़ का 6 फरवरी 1939 को निधन हो गया। उनके बाद इनके पोते और वारिस प्रताप सिंह राव गायकवाड़ बड़ौदा के अगले महाराज बने।

17 संत अय्यन काली (28 अगस्त 1863 – 18 जून 1941)

पृष्ठभूमि – अय्यन काली का जन्म तिरूवंतपुरम के वेंगनूर में 28 अगस्त 1863 को हुआ था। वह पिता अय्यन और माता माला की आठ संतानों में सबसे बड़े थे। उनकी जाति पुलायार थी, जो वहाँ की निम्न जातियों में मानी जाती है। निम्न जाति से होने के कारण अय्यन काली को केवल अपनी ही जाति के बच्चों के साथ खेलने का अधिकार था। एक दिन फुटबाल खेलते समय गेंद अपर जाति के नायर के घर में जा गिरी, उस परिवार के गृहस्वामी ने अय्यन काली को डाटा और अपर जाति के बच्चों के करीब न आने की हिदायत दी। आहत अय्यन काली ने भविष्य में किसी ऐसे अपर बच्चे से दोस्ती न करने की ठान ली। अय्यन काली को गीत–संगीत में भी रूचि थी, बाद में उन्होंने गीतों और नाटकों के माध्यम से अपने समाज को जगाने का कार्य किया।

उन दिनों निम्न जाति के लोगों को गांव में खुला घुमने, साफ कपड़े पहनने और मुख्य मार्गों पर निकलने की आजादी नहीं थी। अय्यन काली को इस तरह की परिपाटी अच्छी नहीं लगी, इन्होंने 25 वर्ष की उम्र तक पहुंचते–पहुंचते अपने जैसे युवाओं का मजबूत संगठन तैयार कर लिया था। अब अय्यन काली के सामने पहली चुनौती थी, पुलायारों को सार्वजनिक सड़कों पर चलने का अधिकार दिलाना। 1893 में उन्होंने दो बैल, एक गाड़ी और दो बड़ी–बड़ी घंटियाँ खरीदी। घंटियों को बैलों के गले में बांधकर और उन्हें गाड़ी में जोड़कर सड़क पर

निकल पड़े जो उस समय बड़ा चुनौती पूर्ण था। गाड़ी में चलते समय बैलों की घंटियाँ जोर–जोर से बज रही थीं, सहसा कुछ अपर जाति के लोगों ने आकर उनका रास्ता रोक लिया। एक पल की देर किए अय्यन काली ने दरांत (हथियार) निकाल लिया, उस समय स्थिति ऐसी बनी कि रास्ता रोकने वाले उपद्रवी सहमकर पीछे हट गये।

अय्यन काली का 25 वर्ष की अवस्था में चेल्लमा से विवाह हो गया। आगे चलकर इस दम्पत्ति के यहाँ सात सन्तानों ने जन्म लिया।

शिक्षा और सामाजिक योगदान – 1904 में अय्यन काली ने पुलायार और अन्य वंचितो की शिक्षा के लिए बैंगनूर में एक स्कूल खोला। परन्तु अपर जाति के लोगों से यह बर्दाशत नहीं हुआ, उन्होंने स्कूल पर हमलाकर उसे तहस–नहस कर दिया। अय्यन काली ने बिना विलम्ब किये स्कूल का नया ढांचा खड़ा कर दिया और अध्यापकों को सुरक्षित लाने ले जाने के लिए रक्षक भी लगा दिए गए। अय्यन काली ने 1907 में साधुजन परिपालन संघम की स्थापना भी की थी। इसका प्रमुख कार्यालय वैंगनूर में बनाया गया था। वहाँ एक कॉन्फ्रेंस हॉल और पुस्तकालय भी था। संस्था की स्थापना के साथ ही स्त्री–पुरूष दोनों उससे जुड़ने लगे। देखते ही देखते उसकी शाखाएं केरल और तमिलनाडू के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में खुलने लगीं। इनके द्वारा महिलाओं के उभोवस्त्र अधिकार के लिए भी संघर्ष किया गया, उस समय त्रावणकोर राज्य की शोषित महिलाओं को अपनावक्ष ढकने का अधिकार प्राप्त नहीं था। अय्यन काली और महिलाओं के संघर्ष के बाद नायर नेताओं के साथ समझौता हुआ जिसमें अय्यन काली की जीत हुई और महिलाओं को उभोवस्त्र का पहनने का अधिकार मिला।

संत अय्यन काली 1904 से ही दमे की बिमारी से ग्रसित थे। अपने समाज के कल्याण और उन्हें न्याय दिलाने के लिए निरन्तर जूझते रहते थे। इसके लिए उन्होंने पूरे त्रावणकोर की यात्राएँ की थी। उन्होंने थकावट और बिमारी के कारण 24 मई 1941 से पूरी तरह बिस्तर पकड़ लिया और 18 जून 1941 को मृत्यु की गोद में सो गये।

18. छत्रपति शाहू जी महाराज (26 जून 1874 – 6 मई 1922)

जीवन परिचय – शाहू जी महाराज का जन्म कोल्हापुर जिले के कागल गाँव के घाटगे शाही मराठा परिवार में 26 जून 1874 में हुआ था। इनका बचपन का नाम यशवंतराव घाटगे था। इनके पिता जयसिंह राव घाटगे गाँव के प्रमुख थे, जबकि उनकी पत्नी राधाबाई भुधोल के शाही परिवार से थीं। शाहू जी महाराज जब केवल 3 वर्ष के थे तभी उनकी सगी माँ राधाबाई की 20 मार्च 1877

को मृत्यु हो गयी थी। ''इतिहास समझने के लिए जाने'' – छत्रपति शिवाजी महाराज (प्रथम) के दूसरे पुत्र के वंशज शिवाजी (चतुर्थ) कोल्हापुर में राज्य करते थे। ब्रिटिश षडयंत्र और ब्राह्मण दीवान की गद्दारी की वजह से जब शिवाजी चतुर्थ का कत्ल हुआ तो उनकी विधवा आनंदी बाई ने अपने जागीरदार जयसिंह राव घाटगे के पुत्र यशवंत राव घाटगे को मार्च 1884 ई. में गोद ले लिया। बाल्य–अवस्था में ही यशवंत राव को शाहू महाराज की हैसियत से कोल्हापुर रियासत की राजगद्दी को सम्भालना पड़ा। यद्यपि राज्य का नियन्त्रण उनके हाथों में 2 अप्रैल 1894 में आया था। शाहू जी महाराज की शादी बड़ौदा के मराठा सरदार खानवीकर की बेटी लक्ष्मीबाई से हुई थी।

शिक्षा और योगदान – शाहू जी महाराज की शिक्षा राजकोट में राजकुमार महाविद्यालय से और धारवाड़ में हुई थी। उन्होंने उस समय देखा कि जातिवाद के कारण समाज का एक बहुसंख्यक वर्ग हर क्षेत्र में पिस रहा है। 1894 ई. में कोल्हापुर रियासत के राजा बनने के बाद उन्होंने शोषितों के उद्धार के लिए कई योजनाएं बनाई और उस पर अमल आरम्भ किया। शाहू जी महाराज ने शोषित और पिछड़ी जाति के लोगों के लिए विद्यालय खोले और छात्रवास बनवाए। इससे उनमें शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ और सामाजिक स्थिति बदलने लगी। परन्तु उस दौरान उच्च वर्ग के लोगों ने इसका विरोध किया। वे शाहू जी महाराज को अपना शत्रु समझने लगे। उनके पुरोहित तक ने उनसे यह कह दिया कि आप शुद्र हैं और शुद्र को वेद मंत्र सुनने का अधिकार नहीं है। शाहू जी महाराज ने इस सारे विरोध का डट कर सामना किया।

शाहू जी महाराज ने शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् भारत भ्रमण किया, उस समय वे कोल्हापुर के महाराज थे परन्तु इसके बावजूद उन्हें भी भारत भ्रमण के दौरान जातिवाद के विष को पीना पड़ा। नासिक, काशी, व प्रयाग सभी स्थानों पर उन्हें रूढ़ीवादी ढोंगी ब्राह्मणों का सामना करना पड़ा। वे लोग शाहू जी महाराज को कर्मकांड के लिए विवश करना चाहते थे परन्तु शाहू जी ने इनकार कर दिया।

एक बार लन्दन के एडवर्ड सप्तम के राज्यभिषेक समारोह के पश्चात् शाहू जी महाराज जब भारत लौटे तब भी यहाँ के ब्राह्मणों ने धर्म के आधार पर उन पर आरोप लगाए और यह प्रचारित किया गया कि वह समुद्र पार करके अपवित्र हो गए हैं। शाहू जी महाराज सोचते थे यदि शासन में सभी वर्ग के लोगों की हिस्सेदारी हो तो शासन स्वयं शक्तिशाली बन जाएगा। इस उद्देश्य की प्रप्ति के लिए 1902 में उन्होंने अतिशुद्र व पिछड़े वर्ग के लिए 50 प्रतिशत का आरक्षण सरकारी नौकरियों में दिया। उन्होंने कोल्हापुर में शुद्रों के लिए शिक्षण संस्थाएं खड़ी कर दी। शोषितों की शिक्षा प्रचार के लिए कमेटी का गठन किया गया, और शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए छात्रवृति व पुरस्कार की व्यवस्था भी

करवाई गई। शाहू जी महाराज ने समाज के दबे–कुचले वर्ग के उत्थान के लिए कई कल्याणकारी योजनाएँ प्रारम्भ की। उन्होंने देव दासी प्रथा, सती प्रथा, बंधुआ मजदूर प्रथा को समाप्त किया। विधवा विवाह को मान्यता प्रदान की और नारी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा का सार भार सरकार पर डाला। मंदिरों, नदियों, सार्वजनिक स्थानों को सबके लिए समान रूप से खोल दिया गया। शाहू जी महाराज ने डॉ. भीमराव आम्बेडकर को उनके अध्ययन व सामाजिक कार्यों के लिए कई बार आर्थिक सहायता दी।

शाहू जी महाराज ने 9 जुलाई 1917 को एक आदेश जारी किया कि कोल्हापुर राज्य के समस्त देव स्थानों की आय पर और सम्पत्ति पर राज्य का नियंत्रण होगा। इसके साथ ही उन्होंने मराठा (पिछड़ी) जातियों के पुजारियों की नियुक्ति का भी आदेश जारी किया। 1920 में उन्होंने पूजा और पुरोहितों के प्रशिक्षण के लिए विद्यालय खुलवाया। 11 नवम्बर 1920 को ही शाहू जी महाराज ने एक हिन्दू कोड बिल पास किया था। इससे पहले 1919 में एक आदेश जारी किया, जिसके अनुसार शोषित–वंचित समाज का कोई भी व्यक्ति किसी भी अस्पताल में आकर सम्मान पूर्वक इलाज करा सकता है। इसके अलावा उन्होंने 1919 में ही यह आदेश भी जारी किया कि प्राईमरी स्कूल, हाई स्कूल और कॉलेजों में जाति के आधार पर छात्रों के साथ कोई भी भेदभाव न किया जाय। उन्होंने शोषितों को नौकरियों में जगह देने के साथ–साथ एक आदेश दिया कि सरकारी विभागों में कार्य कर रहे शोषित समाज के कर्मचारियों के साथ समानता और शालीनता का बर्ताव किया जाय। एक बार कोल्हापुर नरेश ने 1920 में मनमाड़ में बहुजन शोषितों की विशाल सभा में घोषणा करते हुए कहा था– मुझे लगता है आंम्बेडकर के रूप में तुम्हें तुम्हारा मुक्ति दाता मिल गया है। मुझे उम्मीद है वो तुम्हारी गुलामी की बेड़ियाँ काट डालेगा। उन्होंने शोषितों के मुक्तिदाता की महज अपनी जुबानी प्रशंसा नहीं की बल्कि उनकी अधूरी पड़ी विदेशी शिक्षा पूरी करने तथा शोषित मुक्ति के लिए राजनीति को हथियार बनाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान किया।

पिछड़े शोषितों के मसीहा इस राजा का शासन काल 28 वर्षों तक रहा। इस महान समाज सुधारक छत्रपति शाहू जी महाराज की मृत्यु 6 मई 1922 को हुई थी। वह अपने सबसे बड़े पुत्र राजाराम तृतीय को कोल्हापुर के महाराजा के रूप में बनाने में सफल हुए थे। परन्तु यह दुर्भाग्य रहा कि छत्रपति शाहू जी द्वारा शुरू किए गए सुधारों को और विरासत को आगे बढ़ाने के लिए सक्षम नेतृत्व की कमी महसूस होने लगी थी।

19. जननायक बिरसा मुंडा (15 नवम्बर 1875 – 9 जून 1900)

जन्म और प्रारम्भिक जीवन – बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवम्बर 1875 को रांची जिले के उलिहातु गांव में हुआ था। उनकी जाति मुंडा थी, मुंडा रीति रिवाज के अनुसार उनका नाम बिरसा रखा गया। बिरसा के पिता का नाम सुगना मुंडा और माता का नाम करमी हटू था। बांस की झोंपडी मे पले बड़े बिरसा बचपन से अपने दोस्तों के साथ रेत के ढेरों पर खेलते थे, फिर थोड़ा बड़ा होने पर उन्हें जंगल में भेड चराने जाने पड़ता था। बिरसा मुंडा की प्रांरम्भिक शिक्षा उनके मामा के गांव अयुभातु में दो साल वहां रहकर पूरी हुई। बिरसा मुंडा बचपन से ही पढ़ाई में बहुत होशियार थे। इसलिए उन्होंने स्कूल चलाने वाले गुरु जयपाल नाग से ज्ञान प्राप्त किया। जिसके बाद उन्हें जर्मन मिशन स्कूल में दाखिला लेने के लिए कहा गया लेकिन उस समय क्रिस्चियन स्कूल में एडमिशन लेने के लिए ईसाई धर्म अपनाना जरूरी हुआ करता था, इसलिए बिरसा मुंडा ने अपना धर्म परिवर्तन कर अपना नाम बिरसा डेविड रखवा लिया था। कुछ वर्षों बाद बिरसा ने क्रिस्चियन स्कूल छोड़ दिया था, क्योंकि उस स्कूल में आदिवासी संस्कृति का मजाक बनाया जाता था जो कि बिरसा मुंडा को बिल्कुल भी पंसद नहीं था।

बिरसा मुंडा का आन्दोलन – बाहरी लोगों ने जब–जब जनजाति क्षेत्रों में इनके आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया, तब–तब इन जनजाति के लोगों ने अपनी आजादी के लिए आवाज उठाई और विद्रोह का रास्ता अपनाया। आदिवासी इलाकों के जंगलों और जमीनों पर राजा, नवाब व अंग्रेजों का कब्जा नहीं, बल्कि जनता का कब्जा था। राजा, नवाब जरूर थे पर वे उन्हें लूटते थे, उनकी संस्कृति और व्यवस्था में दखल नहीं देते थे, परन्तु इन क्षेत्रों मे जब दखल दिया जाने लगा तब जन जातियों के द्वारा इसका विरोध भी शुरू हुआ।

बिरसा मुंडा ने किसानों का शोषण करने वाले जमींदारों के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा अपने लोगों को दी। यह सब देखकर ब्रिटिश सरकार ने उन्हें लोगों की भीड़ जमा करने से रोका। बिरसा मुडा का कहना था कि मैं तो अपने लोगों को उनका धर्म बता और सिखा रहा हूँ। इस पर पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया, लेकिन गांव वालों ने ऐसा नहीं होने दिया। परन्तु शीघ्र ही उन्हें फिर से गिरफ्तार करके दो वर्ष के लिए हजारी बाग जेल में डाल दिया, और बाद में उन्हें चेतावनी देकर छोड़ दिया गया। सन् 1886 से 1890 के दौरान मस्य सरदार आंदोलन शुरू हो गया था। इस सरदार आंदोलन के कारण लोगों में ईसाइयों के प्रति विद्रोह की भावना जागृत होने लगी थी। बिरसा मुंडा के पिता ने

भी ईसाइ स्कूलों के विरोध में उनका स्कूल छुडवा दिया था। अब बिरसा मुंडा भी सरदार आन्दोलन में शामिल हो गये थे और अपने पारम्परिक रीति रिवाजों के लिए लड़ना भी शुरू कर दिया था। बिरसा मुंडा ने उस समय अंग्रेजों द्वारा किए गये अनाचारों को देखा जिसके कारण उसके मन में अंग्रेजों के प्रति ज्वाला भड़क उठी थी।

बिरसा मुंडा अब अपने विद्रोह द्वारा इतने उग्र हो गए थे कि आदिवासी जनता उनको भगवान मानने लगी थी। उन्होंने धर्म परिवर्तन का विरोध किया और अपने आदिवासी लोगों को प्राकृत धर्म और हिन्दू धर्म की बातों को समझाया था। जब बिरसा मुंडा की प्रसिद्धी चारों और फैलने लगी, तब ब्रिटिश प्रशासकों ने बिरसा को एक संदिग्ध, पागल और शांति भंग करने वाला आरोप लगा कर उनके 7 साथियों सहित गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। राँची में करीब 9 महीने तक बिरसा मुंडा पर कोर्ट में मुकदमा चला। 9 जून सन् 1900 को जेल में ही बिरसा मुंडा की मृत्यु हो गयी लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि उन्हें जहर देकर मारा गया था, जिससे उनकी मृत्यु हो गई।

20. संत गाडगे महाराज (23 फरवरी 1876 – 20 दिसम्बर 1956)

प्रारम्भिक जीवन – संत गाडगे महाराज का जन्म 23 फरवरी 1876 को महाराष्ट्र के अमरावती जिले की तहसील अंजनगांव सुरजी के शेडगांव में धोबी परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम झिंगराजी और माता का नाम सखूबाई था। बाबा गाडगे का पूरा नाम देवीदास डेबूजी झिंगराजी था। बाबा गाडगे अपने नाना के यहाँ मुर्तीजापुर तालुक के दापुरी में रह कर पले–बढ़े थे। बचपन में इनकी दिलचस्पी अधिकतर खेती और मवेशियों में थी। संत गाडगे महाराज लोगों को जानवरों पर अत्याचार करने से रोकते थे और वे समाज में चल रही जातिभेद और रंगभेद की भावना को नहीं मानते थे और लोगों को इसके खिलाफ जागरूक करते थे। गाडगे महाराज लोगों को कठिन परिश्रम, साधारण जीवन और परोपकार की भावना का पाठ पढ़ाते थे। उन्होंने अपनी पत्नी और अपने बच्चों को भी इसी राह पर चलने को कहा। गाडगे महाराज कई बार आध्यात्मिक गुरु मेहर बाबा से भी मिल चुके थे। मेहर बाबा भी गाडगे महाराज को अपने पंसदीदा संतों में मानते थे।

सामाजिक कार्य – गाडगे महाराज पढ़े लिखे नहीं थे, किन्तु बड़े बुद्धीवादी थे। उनका कहना था कि इन अंधविश्वासों, बाह्य आडम्बरों, रूढियों तथा सामाजिक कुरीतियों एवं दुर्व्यसनों से समाज को भयंकर हानि हो सकती है।

इसका वो अनुभव करते थे इसलिए इन सबका घोर विरोध किया। संत गाडगे महाराज के जीवन का एकमात्र उद्देश्य दीन–दुःखियों तथा उपेक्षितों की सेवा करना था। सेवा करने को ही वे ईश्वर भक्ति मानते थे। उनका विश्वास था कि ईश्वर न तो तीर्थस्थानों मे है और न मंदिरों में व न मूर्तियों में है। संत गाडगे बाबा ने तीर्थ स्थानों, पर कई बड़ी–बड़ी धर्मशालाएं इसलिए स्थापित करायी ताकि गरीब यात्रियों को वहाँ मुफ्त में ठहरने का स्थान मिल जाए। प्रतिवर्ष वे बड़े–बड़े अन्न क्षेत्रों का प्रोग्राम भी करते थे, जिनमें अंधे, लंगडे तथा अन्य अपाहिजों को कम्बल, बर्तन आदि भी बांटे जाते थे।

गाडसे बाबा ने अपने जीवन में किसी को शिष्य नहीं बनाया था। जिन्होंने बाबा के मार्ग पर चलने का प्रयास किया, वही सब मानवतावादी इंसान बन गये। बाबा स्वयं एक स्थान पर नहीं रहे, वे सेवा–भाव को ध्यान में रखकर भ्रमण करते रहते थे। बाबा गाडगे ने अपने अनुयायियों से कहा कि– जब मेरी मृत्यु हो जाए वहीं पर मेरा अंतिम संस्कार कर देना, मेरी मूर्ति, समाधि, स्मारक, मंदिर कुछ नहीं बनाना। मेरे कार्य ही मेरा सच्चा स्मारक है। 20 दिसम्बर 1856 को अमरावती जाते समय महाराज की मृत्यु हो गई। जहाँ बाबा का संस्कार किया गया, वह स्थान गाडगे नगर के नाम से जाना जाता है।

21. स्वामी अछूतानंद हरिहर (6 मई 1879 – 20 जुलाई 1933)

प्रारम्भिक जीवन – स्वामी अछूतानन्द हरिहर का जन्म बैशाख पूर्णिमा के दिन 6 मई 1879 को उत्तर प्रदेश में फरूखाबाद जिले के सौरिख गांव में एक चमार परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम रामप्यारी और पिता का नाम मोतीराम था। उनका असली नाम हीरालाल था, अछूतानंद नाम तो उनके गुरु ने उन्हें प्रदान किया था। बालक हीरालाल के माता–पिता ने काफी समय पहले से ही स्वर्ण हिन्दुओं की जातिगत घृणा और कलह से तंग आकर अपना पैत्रिक गांव छोड़ दिया था और उसके बाद जिला मैनपुरी के उमरी गांव में आ बसे थे। बालक हीरालाल बचपन से ही तीव्र बुद्धि के थे। इनका विवाह हीराबाई से हुआ था। इनके यहाँ सिर्फ चार पुत्रियाँ ही थीं।

साहित्यकार और समाज सुधारक – स्वामी अछूतानंद लगभग 10 साल तक साधु–संतों के साथ रहे तथा तीर्थ यात्राओं पर गए। इसके बाद वे आर्य समाज के स्वामी सच्चिदानंद के प्रभाव में आ गए और उनसे जुड़ गये। वहां शामिल होने के बाद उन्होंने अपना नाम बदलकर ''स्वामी हरिहरानंद'' कर लिया और वेद व सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ा। कुछ घटनाओं की श्रंखला के बाद उन्हें समझ आया कि आर्य समाज का वास्तविक मकसद जातिवाद को हटाना नहीं है

बल्कि वंचित शोषितों को हिन्दू धर्म के अंतर्गत रखना है। अब उन्होंने आर्य समाज के आन्दोलनों से खुद को अलग कर लिया और अपने लेखन व विरोध के द्वारा उन लोगों के खिलाफ अभियान शुरू कर दिया। उन्हें दिल्ली आमंत्रित किया गया और आर्य समाज के नेता स्वामी अखिलानन्द के साथ शास्त्रों पर सफलता पूर्वक बहस की गई फिर उन्होंने ''जाति सुधार अछूत सभा'' की नींव रखी और दिल्ली शाहदरा समाज के मंत्री आर्य उपदेशक रामचन्द्र और नौबत सिंह के प्रस्ताव से उन्हें श्री 1008 की उपाधि से सम्मानित किया गया।

वर्ष 1922 में उन्होंने आदि हिन्दू आन्दोलन की स्थापना की और हिन्दी क्षेत्र में शोषितों के लिए पहले सामाजिक सुधार आन्दोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने कहा कि सभी वंचित शोषित भारत के मूल निवासी है। वर्ष 1922 में ही उन्होंने दिल्ली से अपना पहला मासिक पत्र अछूत शुरू किया था, लेकिन 1923 में बन्द हो गया था। वर्ष 1927 में स्वामी अछूतानन्द एक पब्लिक मीटिंग में हिन्दू और मुसलमानों की तरह आदि हिन्दुओं (शोषित जातियों) के लिए पृथक प्रतिनिधित्व और स्वतंत्रता की मांग की थी। 30 नवम्बर 1930 को स्वामी अछूतानन्द ने सायमन कमीशन से मुलाकात की थी, जिसके सदस्य डॉ. आंबेडकर थे। स्वामी अछूतानंद को जब मालूम हुआ कि डॉ. आंबेडकर अछूत समाज के हैं और वे देश की दबी-कुचली जातियों के लिए कार्य कर रहे हैं तो उन्होंने डॉ. आंबेडकर से मिलने की ठानी। सन् 1928 में आयोजित ''आदि हिन्दू महासभा'' के एक अधिवेशन में उनकी पहली मुलाकात हुई थी। बाद में इन दोनों महापुरूषों ने देश की आजादी के साथ-साथ दबी-पिछड़ी जातियों के अधिकारों के लिए अपनी आवाज बुलंद की थी।

स्वामी अछूतानंद के काव्य संग्रहों में, हरिहर भजन माला, विज्ञान भजन माला आदि हिन्दू भजन माला एवं आदिवंश का डंका का उल्लेख मिलता है। इसमें आदि वंश का डंका लोक छंदों में रचित कृति है जिसमें कव्वाली, गजल, भजन और मरसिया आदि शामिल हैं। स्वामी अछूतानंद द्वारा रचित एक खण्ड काव्य है जो आदि खण्ड के नाम से है। इसमें शोषित के उत्थान और पतन के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है। यह खण्ड काव्य 1929 ई. में प्रकाशित हुआ। इसके लोक काव्य छन्दों में आल्हा का प्रयोग किया गया है। स्वामी अछूतानंद के द्वारा लिखे गये दो नाटक भी मिलते हैं इनके नाम ''राम-राज्य न्याय'' और ''मायानन्द बलिदान'' है। ये दोनों नाटक 1926 और 1927 ई. में लिखे गये थे।

स्वामी अछूतानंद की मृत्यु 20 जुलाई 1933 को 54 वर्ष की आयु में कानपुर जिले के बेना झाबर में हुई थी।

22. पेरियार ई. वी. रामास्वामी (17 सितम्बर 1879 – 24 दिसम्बर 1973)

जीवन परिचय – पेरियार ई. वी. रामास्वामी नायकर का जन्म दक्षिण भारत के ईरोड (तमिलनाडु) नामक स्थान पर 17 सितम्बर 1879 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम वेंकटप्पा नायकर तथा माता का नाम चिन्नाबाई था। वेंकटप्पा नायकर एक व्यापारी थे जो शुद्र वर्ण के अंतर्गत आते थे। पेरियार रामा स्वामी नायकर की औपचारिक शिक्षा चौथी कक्षा तक ही हुई थी। दस वर्ष की आयु के बाद वे अपने पिता के साथ व्यापार में सहयोग करने लगे थे। इनका विवाह 19 वर्ष की अवस्था में नागम्मई के साथ हुआ था।

रामास्वामी द्वारा रूढ़िवाद-अन्धविश्वास का विरोध – पेरियार रामा स्वामी का परिवार धार्मिक तथा रूढ़िवादी था लेकिन अपने परिवार की परम्पराओं के विपरीत पेरियार रामास्वामी जवानी से ही तार्किक पद्धति के रूप में चिन्तन मनन करने लगे थे। इनके घर में अक्सर धार्मिक अनुष्ठान एवं प्रवचन होते रहते थे। रामा स्वामी अपने तार्किक प्रश्नों से अनुष्ठानकर्ताओं को अक्सर संकट में डाल देते थे। रामास्वामी की जैसे-जैसे उम्र बढ़ी वैसे ही वे वैज्ञानिक सोच पर दृढ़ होते गये। इस प्रकार परिवार की अंधविश्वास युक्त एवं ढकोसले वाली बातें एक के बाद एक रामास्वामी के प्रहार का निशाना बनने लगीं। वह अपनी पत्नी व परिवार के अन्य सदस्यों को मंदिर भी नहीं जाने देते थे। वे अपने अस्पृश्य मित्रों को परिवार की परम्परा के विरूद्ध अपने घर बुलाते और उनके साथ भोजन करते। पेरियार रामास्वामी का इस प्रकार धर्म के विरूद्ध आचरण उनके परिवार के लोगों को खटकने लगा। पिता-पुत्र के बीच छुट-पुट मतभेद और विरोध के कारण रामास्वामी ने पिता के घर को छोड़ने का निश्चय कर लिया।

गृह त्याग के बाद रामा स्वामी कुछ दिन इधर-उधर घूमते रहे। बहुत दिनों तक वे सन्यासियों के साथ रहे। सन्यासी जीवन व्यतीत करने के पश्चात वे पुनः अपने घर लौट आये, उनके आने के बाद घर वाले भी नम्र हो गये थे। रामा स्वामी को उसके बाद छोटी-छोटी विभिन्न संस्थाओं के विभिन्न पदों पर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। कांग्रेस की नीतियों और कार्यक्रमों से प्रभावित होकर रामा स्वामी कांग्रेस के सदस्य बने। सन् 1920 में महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन का दक्षिण भारत में पेरियार रामा स्वामी को नेतृत्व का दायित्व सौंपा गया। रामा स्वामी ने इस दायित्व को पूरी गम्भीरता से लिया।

1925 में कांग्रेस से कुछ मतभेद होने के कारण उन्होंने कांग्रेस को छोड़ दिया। उसके बाद रामा स्वामी ने आत्म सम्मान आन्दोलन की स्थापना की। 1926 में उन्होंने अपना सम्बंध जस्टिस पार्टी से जोड कर अस्पृश्य और पिछड़ी जातियों की उन्नति के लिए अटूट प्रयत्न किया। 1938 में उन्हें सर्वसम्मति से

जस्टिस पार्टी का अध्यक्ष चुना गया। उसके बाद स्वाभिमान आन्दोलन और जस्टिस पार्टी ने एक–दूसरे के साथ मिलकर कार्य किया। 1944 में उन्होंने स्वाभिमान आन्दोलन और जस्टिस पार्टी के गठबन्धन से ''दविड कड़गम'' नामक संस्था की स्थापना कर ली थी।

पेरियार रामास्वामी मूल रूप से एक सामाजिक क्रांतिकारी थे वे एक बुद्धिवादी, अनीश्वरवादी एवं मानववादी थे। उनके चिन्तन का मुख्य विषय समाज था, फिर भी उनके विचार और दृष्टिकोण राजनीति एवं आर्थिक क्षेत्र में परिलक्षित होते हैं, उनका कहना था कि सामाजिक मुक्ति ही राजनैतिक एवं आर्थिक मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करेगी। उनकी इच्छा थी कि अंग्रेजों के भारत छोड़ने से पहले ही सामाजिक समानता स्थापित हो जानी चाहिए। पेरियार रामास्वामी का मत था कि शोषित–वंचित समस्या हिन्दू धर्म एवं हिन्दू समाज व्यवस्था की देन है। उनके अनुसार शोषित एवं शूद्र इस देश के मूलनिवासी हैं। आर्य बाहर से यहाँ आक्रमणकारी के रूप में आये तथा यहां के मूल निवासियों को युद्ध में पराजित करके उन्हें अपना दास बना लिया। आर्यों ने यहाँ के मूल निवासियों को दास बनाने के साथ–साथ उनकी सभ्यता और संस्कृतियों को भी नष्ट कर दिया था। आर्यों ने अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए वैदिक धर्म एवं वर्णव्यवस्था का निर्माण किया। ईश्वर, मूर्ति पूजा आदि का आविस्कार आर्यों ने यहाँ के मूल निवासियों को मानसिक दास बनाने के लिए किया। उनका कहना था कि यदि संसार में निर्धन –धनी, शोषक–शोषित, ऊँच–नीच का भेदभाव समाप्त कर दिया जाय तो ईश्वर और धर्म का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा इसलिए रामास्वामी ने विश्वास के साथ कहा था कि ईश्वर नहीं है, ईश्वर बिल्कुल नहीं है। जो व्यक्ति ईश्वर का प्रचार करता है वह धूर्त है जो ईश्वर को पूजता है, वह जंगली है। उनका कहना था कि मनुष्य के अतिरिक्त पृथ्वी के किसी अन्य प्राणी में ईश्वर का कोई औचित्य नहीं है।

पेरियार रामास्वामी की मृत्यु 94 वर्ष की उम्र में 24 दिसम्बर 1973 को तमिलनाडू राज्य के वेलोर में हुई। उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नी ने पेरियार के द्रविड़ आन्दोलन को सम्भाले रखा।

23. महात्मा संतराम बी. ए. (14 फरवरी 1887 – 31 मई 1988)

प्रारम्भिक जीवन – संत राम का जन्म पंजाब में होशियारपुर के बस्ती गांव में 14 फरवरी 1887 ई. में कुम्हार समाज में हुआ था। उनकी आरम्भिक शिक्षा बजवाड़ा के हाई स्कूल में हुई थी वर्ष 1909 में उन्होंने गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर से बी.ए. की परीक्षा पास की थी। तभी से वे संतराम बी.ए. के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वे अपने समय के समाज सुधारक और हिन्दी के लेखक थे। इन्होंने 100 से अधिक पुस्तकें लिखी एवं कई पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन किया। संतराम बी. ए. ने जातिविहीन समाज के निर्माण एवं पाखंडवाद के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया।

सामाजिक कार्य – संतराम बी.ए. बचपन से ही समाज सेवा के लिए तत्पर रहते थे। इन्होंने अपने सरनेम में जाति का उल्लेख नहीं किया बल्कि अपनी शिक्षा के साथ समानता को अधिक महत्व दिया। वर्ष 1922 में परमानन्द के साथ मिलकर आपने ''जाति–पाति तोड़क मंडल'' की स्थापना की। मंडल के माध्यम से इन्होंने समाज की बुराईयों पर करारा प्रहार किया। इनकी लोकप्रियता पंजाब के अलावा अन्य राज्यों में भी बढ़ती गयी और अन्य राज्यों में भी मंडल की शाखाएं खेली गयी। इन्होंने बहुत परिवारों में अन्तरजातीय विवाह भी कराए।

संतराम ने स्वयं अपनी संतानों का विवाह जाति भेद तोड़कर किया। जाति–पाति तोड़कर शीर्षक से उन्होंने एक हिन्दी मासिक भी निकाला। वर्ष 1928 में इस पत्रिका का नाम बदलकर उन्होंने ''क्रांति'' कर दिया था। संतराम उर्दू, फारसी और पंजाबी भाषाओं के ज्ञाता थे। हिन्दी में वर्षों अभ्यास के बाद उन्होंने युगान्तर पत्रिका में हिन्दी के वे सभी लेख लिखे जो कभी अन्य भाषा में सरस्वती पत्रिका में छपा करते थे। इन्होंने 1948 में अपनी एक ऐतिहासिक पुस्तक ''हमारा समाज'' भी लिखी जिसमें भारतीय समाज में व्याप्त बुराईयों पर कड़ा प्रहार किया गया।

वर्ष 1936 में संतराम ने ''जात–पात तोडक मंडल'' की सभा की अध्यक्षता के लिए डॉ. आम्बेडकर को आमंत्रित किया था। उस समय डॉ. आम्बेडकर ने जाति विषयक शोधपूर्ण निबंध लिखकर मंडल के सदस्यों को भेजा था। जब मंडल के सदस्यों द्वारा वह निबंध पढ़ा गया तो मंडल के कुछ सदस्यों ने उसका विरोध किया। वे लोग चाहते थे कि आम्बेडकर हिन्दू ग्रंथों को नकारने की अपनी राय वापिस ले लें। किन्तु आम्बेडकर ने अपने लेख में संसोधन करने से मना कर दिया। इसके बाद संतराम ने यह कहते हुए सम्मेलन को ही स्थगित कर दिया कि– आम्बेडकर का कोई विकल्प नहीं है लेकिन उन्होंने उस निबंध को प्रकाशित कराकर उसे वितरित करा दिया। वहीं निबंध आगे चल कर '' एनिहिलेशन ऑफ कास्ट'' नामक किताब के रूप में प्रकाशित हुआ। अतः आम्बेडकर से ''जाति का विनाश'' किताब लिखवाने का सारा श्रेय संतराम को ही जाता है। जब गांधी ने आम्बेडकर की ''जाति का विनाश'' पुस्तक की आलोचना की तो संतराम बी.ए. ने गांधी की आलोचना का जवाब देते हुए पूछा था कि– आप अस्पृश्यता को दूर करने का उपाय तो करते हैं लेकिन वर्णव्यवस्था

का बचाव क्यों करते हैं। यह भी सवाल उठाया था कि जाति व्यवस्था का शास्त्रों में समाधान खोजना वैसा ही है जैसे की कीचड़ को कीचड़ से ही धोना। संत राम बी. ए. समकालीन हिन्दू लेखक और सुधारक वर्ण व्यवस्था को खत्म किये बिना ही अस्पृश्यता और जात–पांत को मिटाना चाहते हैं। जबकि संतराम बी. ए. वर्ण व्यवस्था को ही समाप्त करने की बात कर रहे थे। इनका मानना था कि जब तक जाति व्यवस्था की जड़ वर्ण व्यवस्था नहीं मिटेगी, तब तक शोषितो और पिछड़ो की समस्याओं का समाधान नहीं होगा। इस तरह संतराम बी.ए. ने पाखडंवाद, अंध विश्वास और जातिवाद के खिलाफ आजीवन संघर्ष किया। 31 मई 1988 ई. में इस महापुरूष ने अंतिम सांस ली थी।

24. सर छोटू राम (24 नवम्बर 1881 – 9 जनवरी 1945)

जीवन परिचय – छोटू राम का जन्म 24 नवम्बर 1881 में हरियाणा (पंजाब) में रोहतक (झज्जर) जिले के गांव गढ़ी सांपला के जाट परिवार में हुआ था। छोटूराम का वास्तविक नाम राय रिछपाल था। उनके पिता का नाम सुखी राम था। वे अपने भाईयों में सबसे छोटे थे, इसलिए परिवार के लोग उन्हें छोटू कहकर पुकारते थे। स्कूल के रजिस्टर में भी उनका नाम छोटूराम ही लिखा दिया गया और वे महापुरूष छोटूराम के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। उनका विवाह झज्जर के गांव खीरी में जाट परिवार की लड़की से हुआ था।

छोटू राम ने जनवरी 1891 में मिडिल स्कूल झज्जर में अपनी प्राईमरी शिक्षा ग्रहण की, उसके बाद उन्होंने क्रिश्चियन मिशन स्कूल दिल्ली में प्रवेश लिया। उन्होंने 1903 में अपनी बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की और सेंट स्टीफंस कॉलेज दिल्ली जाकर पढ़ाई पूरी की, यहां से इन्होंने 1905 में संस्कृत में विशेष योग्यता के साथ स्नातक किया। छोटूराम ने अपने जीवन में शुरूआत में ही आदर्श छात्र व युवा चरित्रवान के रूप में और वैदिक आर्य समाज में अपनी आस्था बना ली थीं। साल 1907 तक इन्होंने पत्रकार के तौर पर हिन्दुस्तान अखबार में कार्य किया। साल 1911 में इन्होंने आगरा से वकालत की डिग्री प्राप्त की। इसी वर्ष इन्होंने चौधरी लालचन्द के साथ मिलकर जाट सभा का गठन किया।

योगदान – वकालत के क्षेत्र में छोटू राम की निष्पक्षता और निःशुल्क सलाह ने इनको बहुत सम्मान दिलाया। साल 1915 में इन्होंने गजट नाम से एक अखबार की भी शुरूआत की थी। इसके बाद छोटू राम ने स्वाधीनता संग्राम में भी बढ़ चढ़कर भाग लिया। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन से छोटूराम कभी सहमत नहीं हुए इसलिए इन्होंने किसानों के हित की लड़ाई हमेशा संवैधानिक तरीके से ही लड़ी। बाद में इन्होंने अपनी स्वतन्त्र पार्टी यूनियनिस्ट पार्टी से चुनाव

लड़ा और 1937 में राजस्व मंत्री भी बन गये। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान करीब 22 हजार जाटों को सेना में भर्ती कराया। छोटूराम की कार्य कुशलता और देश प्रेम को देखते हुए सरदार वल्लभ भाई पटेल ने भी इनको खूब सहराया। छोटूराम के प्रयासों के कारण ही किसानों के हितों को ध्यान में रखते हुए साहूकार पंजीकरण एक्ट (1934) गिरवी जमीनों की मुक्त वापसी एक्ट (1938), व्यवसाय श्रमिक अधिनियम (1940), कर्जा माफी अधिनियम (1934) इत्यादि नियम और कानूनों को लागू किया गया। इन्होंने किसानों को अंग्रेजी सरकार की बंधुआ नीति और कर्ज से मुक्ति दिलाई। छोटूराम को पंजाब रिलिफ इंडेब्टनेस (1934), दा पंजाब प्रोटेक्शन एक्ट (1936) आदि कानूनों को लागू कराने का श्रेय भी दिया जाता है। उस समय छोटूराम ने ही भाखंडा बांध बनाने का प्रस्ताव रखा था। सतलुज नदी के पानी पर अधिकार बिलासपुर राजा का था। छोटूराम ने अपने प्रयासों से बिलासपुर के राजा के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर कर भाखडा बांध के प्रस्ताव को पास कराया था।

छोटूराम ने भ्रष्ट सरकारी अफसरों और सूदखोर महाजनों के शोषण के खिलाफ अनेक लेख लिखे और कोर्ट में उनके विरूद्ध मुकदमें भी लड़े और जीता। इन्होंने अपने लेख मोर बचाओ, ठग्गी के बाजार की सैर, बेचारा जमींदार, जाट नौ जवानों के लिए जिन्दगी के नुस्खे व पाकिस्तान के द्वारा किसानों में राजनैतिक चेतना, स्वाभिमानी भावना तथा देशभक्ति की भावना पैदा करने का प्रयास किया। 9 जनवरी 1945 को सर छोटूराम ने आखिरी सांस ली। वे स्वयं तो चले गये पर उनके लेख आज भी एक अमूल्य विरासत के रूप में देश में विद्यमान हैं। आज पूरे देशभर में उनके नाम पर कई संस्थानों और योजनाओं के नाम हैं। हरियाणा में उनके पोते बिरेन्द्र सिंह ने उनके जन्म–स्थल पर एक 64 फुट लम्बी ऊंची प्रतिमा बनवा कर लगवाई।

25. बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर (14 अप्रैल 1891 – 6 दिसम्बर 1956)

प्रारम्भिक जीवन – डॉ. भीमराव आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को भारत के मध्य प्रान्त (मध्य प्रदेश) में स्थित महू नगर की सैन्य छावनी में हुआ था। वे रामजी मालोजी सकपाल और भीमाबाई की 14 वीं और आखिरी संतान थे। उनका परिवार मराठी मूल का कबीर पंथ को मानने वाला था। इनके परिवार का मूल निवास स्थान महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले में आंबडवे गांव था। इनका परिवार महार जाति से सम्बंध रखता था, जो उस समय शोषित वर्ग में आती थी। इस कारण उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से भेदभावों का सामना करना पड़ता था। भीमराव आंबेडकर के पिता राम जी सकपाल ब्रिटिश ईस्ट इंडिया

कम्पनी की सेना में कार्यरत थे। वह सेना की मह् छावनी में कार्य करते हुए सूबेदार के पद तक पहुँच गये थे।

विद्यालय की पढ़ाई में सक्षम होने के बावजूद बालक भीमराव को छुआछूत के कारण अनके प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था। राम जी सकपाल ने 7 नवम्बर 1900 को सतारा के गवर्न्मेन्ट हाईस्कूल में अपने बेटे भीमराव का नाम ''भिवा राम जी आंबडवेकर'' लिखवाया। आंबेडकर का मूल उपनाम सकपाल की बजाय आंबडवेकर लिखवाया जो कि उनके आंबडवे गाँव से सम्बंधित था। वहाँ कोकण प्रान्त के लोग अपना उपनाम गाँव के नाम से रखते थे, अतः आंबेडकर के आंबडवे गांव से आंबडवेकर उपनाम स्कूल में दर्ज कराया गया। किन्तु विद्यालय के शिक्षक ने भीमराव के पिता राम जी सकपाल के कहने पर भीमराव के उपनाम से आंबडवेकर हटा कर उसके स्थान पर उपनाम आंबेडकर कर दिया। इस तरह उनका नाम भीमराव आंबेडकर हो गया। अप्रैल 1906 में जब भीमराव लगभग 15 वर्ष की आयु के थे, तो उनकी शादी 9 साल की लड़की रमाबाई से कराई गई थी। उन दिनों भारत में बाल विवाह का प्रचलन था।

शिक्षा – भीमराव आंबेडकर ने सतारा के गवर्न्मेण्ट हाईस्कूल मे 7 नवम्बर 1900 को अंग्रेजी की पहली कक्षा में प्रवेश लिया था। इस दिन शैक्षिक जीवन आरम्भ करने के कारण 7 नवम्बर को महाराष्ट्र में विधार्थी दिवस के रूप में मनाया जाता है। जब भीमराव ने अंग्रेजी से चौथी कक्षा की परीक्षा उत्तीर्ण की तो उन्होंने अपने समाज के बीच सार्वजनिक समारोह मनाया। जिसमें परिवार के मित्र एंव लेखक दादा केलुस्कर भी आये। दादा केलुस्कर ने भीमराव को स्वयं लिखी ''बुद्ध की जीवनी'' भेंट दी, इसे पढ़कर उन्होंने पहली बार गौतम बुद्ध व बौद्ध धर्म के बारे में जाना।

भीमराव आंबेडकर ने 1907 में मैट्रिकुलेशन (मैट्रिक) पास करने के बाद एल्फिस्टन कॉलेज से 1912 में ग्रेजुएट हुए। 1913 से 1915 के बीच प्राचीन भारत व्यापार पर एक शोध प्रबन्ध लिखा था। डॉ. भीमराव ने 1915 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम. ए. की शिक्षा ली। 1917 में इन्होंने पी.एच. डी. की उपाधि प्राप्त कर ली थी। यह शोध उन्होंने नेशनल डेवलपमेंट फॉर इंडिया एंड एनालिटिकल स्टडी विषय पर किया था। 1917 में ही लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में उन्होंने दाखिला लिया लेकिन साधनों के अभाव के कारण वह अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाए। कुछ समय बाद लंदन जाकर उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी कर ली। इसके साथ–साथ एम एस सी और बार एटलॉ की डिग्री भी उन्होंने प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार डॉ. भीमराव आंबेडकर 32 डिग्रीयों के साथ और 9 भाषाओं के सबसे बेहतर जानकार माने गये थे।

सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक जीवन – डॉ. भीमराव आंबेडकर ने मानवाधिकार के अंतर्गत वंचित–शोषित, आदिवासियों के मंदिर प्रवेश, पीने के पानी, छुआछूत, जाति–पाति, ऊँच–नीच जैसी सामाजिक कुरीतियों को मिटाने के लिए महाड सत्याग्रह (1928), नासिक सत्याग्रह (1930), येवला गर्जन (1935), जैसे आन्दोलन चलाये। उन्होंने महिलाओं के पिछड़ेपन का मुख्य कारण शिक्षा का अभाव और भेदभाव पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को माना है। शिक्षा में समानता के लिए बाबा साहेब ने स्पष्ट कहा था कि शिक्षा पर किसी एक ही वर्ग का अधिकार नहीं है। समाज के प्रत्येक वर्ग को शिक्षा पाने का समान अधिकार है। डॉ. आंबेडकर ने श्रममंत्री रहते हुए श्रमकल्याण के लिए श्रमिकों को 12 घण्टे समय कार्य को घटाकर 8 घंटे का समय कार्य, समान कार्य समान वेतन, प्रसूति अवकाश, संवैतनिक अवकाश, कर्मचारी राज्य बीमा योजना, स्वास्थ्य सुरक्षा कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम 1952 बना कर मान्यता प्रदान करायी।

डॉ. आंबेडकर ने जात–पात तोडक मंडल लाहौर (1937) के अधिवेशन के लिये तैयार किये अपने अभिभाषण के द्वारा भारतीय समाज के धर्मग्रन्थों में व्यापक मिथ्या अंधविश्वास एवं अन्धश्रद्धा से मुक्ति दिलाने का कार्य किया। डॉ. आंबेडकर का राजनैतिक कैरियर 1926 में शुरू हुआ और 1956 तक वे राजनैतिक क्षेत्र में विभिन्न पदों पर रहे। 1932 को गांधी जी और डॉ आंबेडकर के बीच एक संधि हुई जो ''पूना संधि'' के नाम से जानी जाती है। 13 अक्टूबर 1935 को डॉ. आंबेडकर को सरकारी लॉ कॉलेज का प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया। दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज के संस्थापक केदारनाथ सहानी की मृत्यु के बाद कॉलेज की गवर्निंग बॉडी के अध्यक्ष रहे। मुम्बई में बसने के बाद बाबा साहेब ने अपने एक तीन मंजिले घर ''राजगृह'' का निर्माण कराया। जिसमें उनके निजी पुस्तकालय में 50 हजार से ज्यादा पुस्तकें थी। इसी वर्ष 27 मई 1935 को उनकी पत्नी रमाबाई की बिमारी के बाद मृत्यु हो गई। अगस्त वर्ष 1936 में डॉ. आंबेडकर ने स्वतंत्र लेबर पार्टी की स्थापना की। उसके बाद 1937 में डॉ. आंबेडकर ने कोंकण क्षेत्र में पट्टेदारी को खत्म करने के लिए विधेयक पास करवाया। भारत के 1947 में आजाद होने पर डॉ. भीम राव आंबेडकर की अध्यक्षता में एक संविधान प्रारूप समिति का गठन किया गया। 26 नवम्बर 1947 को डॉ. आंबेडकर ने संविधान का प्रारूप लगभग दो साल के समय के बाद सविधान सभा के सामने प्रस्तुत किया और जिसे 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया। हिन्दू कोड बिल के पास न होने के कारण 1951 में इन्होंने कानून मंत्री से इस्तीफा दे दिया। 14 अक्टूबर 1956 तक उन्होंने हिन्दू सिद्धान्तों में अस्पृश्यता की निरन्तरता के कारण निराश होकर हिन्दू धर्म को त्याग दिया

और नागपुर में एक समारोह में लगभग दो लाख बहुजन शोषितों के साथ बौद्ध बन गये।

डॉ. भीमराव आंबेडकर 1948 से ही डायबिटीज की बीमारी से पीडित थे। 3 दिसम्बर 1956 को उन्होंने अपनी आखिरी पांडुलिपि ''बुद्धा एंड धम्मा'' को पूरा ही किया था। उन्होंने 6 दिसम्बर 1956 को अपने घर अलीपुर रोड़ दिल्ली में अपनी अंतिम सांस ली थी।

26. माता रमाबाई आंबेडकर (7 फरवरी 1898 – 27 मई 1935)

जीवन परिचय – रमाबाई का जन्म 7 फरवरी 1898 को एक गरीब परिवार में हुआ था। उनके पिता भिकू धुत्रे व माता रूक्मिणी जो दाभोल के पास वंणद गांव में नदी किनारे की बस्ती में रहते थे। इनके 3 बहनें और 1 भाई था। रमाबाई के पिता दाभोल बन्दरगाह से मछली की टोकरी को बाजार तक ढोकर परिवार की आजीविका चलाते थे। रमाबाई की माता का निधन रमा के बचपन में ही हो गया था। उसके कुछ दिनों बाद उनके पिता भिकू का भी निधन हो गया था। फिर इनके चाचा वलंगकर और मामा गोविन्दपुरकर इन सब बच्चों को लेकर मुम्बई में चले गये थे और वहाँ भायखला चाल में रहने लगे। उधर रामजी सकपाल अपने पुत्र भीमराव के लिए वधु तलाश कर रहे थे उन्हें रमाबाई के बारे में पता चला, तो वे रमा को देखने चले गये, देखकर रमा उन्हें पंसद आ गयी। इस तरह 1906 में रमाबाई का विवाह भीमराव आंबेडकर के साथ सम्पन्न हो गया। विवाह के समय रमाबाई की उम्र 9 वर्ष थी और भीमराव की उम्र 14 वर्ष थी और भीमराव उस समय 5वी अंग्रेजी कक्षा में पढ़ रहे थे।

आपसी सहयोग – रमा बाई अपने पति भीमराव आंबेडकर को प्यार से ''साहेब'' कहकर बुलाती थी और पति आंबेडकर उनको ''रामू'' कहते थे। रमाबाई ने आंबेडकर की महत्वकांक्षाओं का पूरा समर्थन किया और उन्होंने उन्हें विदेशों मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी प्रोत्साहित किया। जब बाबा साहेब अपनी पढ़ाई के लिए विदेश मे थे तो उन्होंने कई कठिनाईयों का सामना किया, लेकिन बाबा साहेब को अपने लक्ष्यों को पूरा करने से कभी नहीं रोका। बाबा साहेब जब विदेश में थे तो भारत में रमाबाई को कई आर्थिक परेशानियों का सामना करना पड़ा। उन्होंने गोबर से उपले बनाकर उनका उपयोग खाना पकाने/बनाने में करती रही थी। रमाबाई ने बाबा साहेब को विदेशों में डॉक्टरेट आफ साईंस की सर्वोच्च शैक्षणिक डिग्री प्राप्त करने में हर सम्भव मदद की थी।

निधन – भीमराव आंबेडकर और रमाबाई की एक बेटी (इन्दु) और चार बेटे (यशवंत, गंगाधर, रमेश और राजरत्न) थे। उनके चार बच्चों की बिमारी के

कारण मौत हो गयी थी सिर्फ यशवन्त एकमात्र जिन्दा बचे थे। लम्बी बिमारी के बाद रमाबाई आंबेडकर का भी 1935 को निधन हो गया। 1941 में भीमराव आंबेडकर की एक पुस्तक ''थॉट्स ऑन पाकिस्तान'' प्रकाशित हुई जिसे उन्होंने रमाबाई को समर्पित किया।

27. शहीद उधम सिंह (26 दिसम्बर 1899 – 31 जुलाई 1940)

जीवन परिचय – उधम सिंह का जन्म 26 दिसम्बर 1899 में पंजाब के संगरूर जिले के सुनाम गांव में एक सिख परिवार में हुआ था। उनके पिता सरदार तेहाल सिंह जम्मु उपली गांव के रेलवे क्रॉसिंग पर वॉचमैन का काम करते थे। उनकी माता नारायण कौर एक ग्रहणी थीं। उनके दो बच्चे उधमसिंह और मुक्ता सिंह जिनकी वो देखभाल किया करती थी। सन् 1901 में उधम सिंह की माता और 1907 में उनके पिता का निधन हो गया था। माता–पिता की मृत्यु के बाद दोनों भाई अमृतसर में जाकर एक अनाथालय में रहने लगे। अनाथालय में उधम सिंह की जिंदगी ठीक चल ही रही थी कि 1917 में उनके बड़े भाई का देहांत हो गया। अब वह पूरी तरह अनाथ हो गये थे। 1919 में उन्होंने अनाथालय छोड़ दिया और क्रांतिकारियों के साथ मिलकर आजादी की लड़ाई में शामिल हो गए।

क्रांतिकारी गतिविधियाँ – उधम सिंह 13 अप्रैल 1919 को अंग्रेजों द्वारा घटित जलियाँवाला बाग नरसंहार के प्रत्यदर्शी थे। राजनीतिक कारणों से जलियाँवाला बाग में मारे गए लोगों की सही संख्या कभी सामने नहीं आ पाई। इस घटना से उधम सिंह तिलमिला गये और उन्होंने जलियाँवाला बाग की मिट्टी हाथ में लेकर जनरल डायर को सबक सिखाने की प्रतिज्ञा ले ली। अपने इस ध्येय को अंजाम देने के लिए उधम सिंह ने अलग–अलग नामों से अफ्रीका, नैरोबी, ब्राजील और अमेरिका की यात्रा की। सन् 1934 में उधम सिंह लन्दन पहुँचे और वहां 9 एल्डर स्ट्रीट कमर्शियल रोड पर रहने लगे। वहाँ उन्होंने यात्रा के उद्देश्य से एक कार खरीदी और साथ में अपना कार्य पूरा करने के लिए छः गोलियों वाली एक रिवॉल्वर भी खरीदी। इसके बाद जनरल डायर को ठिकाने लगाने के लिऐ उचित समय का इन्तजार करने लगा। जलियाँवाला बाग हत्याकांड के 21 साल बाद 13 मार्च 1940 को रायल सेंट्रल एशियन सोसायटी की लन्दन के काक्सटन हॉल में बैठक थी जहाँ जनरल डायर भी वक्ताओं में से एक था। उधम सिंह भी उस दिन समय से ही बैठक स्थल पर पहुँच गए। अपनी रिवॉल्वर उन्होंने एक मोटी किताब में छिपा ली। इसके लिए उन्होंने किताब के पृष्ठों को रिवॉल्वर के आकार में उसी तरह से काट लिया था। बैठक के बाद उधम सिंह ने दीवार के साथ से मोर्चा संभालते हुए जनरल डायर पर गोलियाँ दाग दी।

उनमें से दो गोलियाँ जनरल डायर को लगी जिससे उसकी तत्काल मौत हो गई। उधम सिंह ने भागने की कौशिश नहीं की और अपनी गिरफ्तारी दे दी। उन पर मुकदमा चलाया गया और 4 जून 1940 को उधम सिंह को हत्या का दोषी ठहराया गया। उसके बाद 31 जुलाई 1940 को उन्हें पेंटनविले जेल में फांसी दे दी गई।

28. दादा साहेब गायकवाड़ (15 अक्टूबर 1902 – 29 दिसम्बर 1971)

जीवन परिचय – दादा साहेब गायकवाड़ का जन्म 15 अक्टूबर 1902 को नासिक में हुआ था। उनका पूरा नाम भाऊराव कृष्णराव गायकवाड था, लेकिन उन्हें खास तौर पर दादा साहेब गायकवाड़ के नाम से जाना जाता है। उन्हें महाराष्ट्र में बाबा साहेब आंबेडकर के वरिष्ठ सहयोगी और शोषित समुदाय में एक सम्मानित व्यक्ति के रूप में माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि गायकवाड स्वंय शोषित समुदाय के कई आन्दोलनों में आंबेडकर का साथ देने आये थे। इसलिए उन्हें बहुजन शोषितों की पीड़ा और पीड़ा का प्रत्यक्ष अनुभव था। यही कारण रहा है कि बहुजन शोषित समुदाय के लिए उनकी करूणा उनके आंतरिक उत्साह से आयी थी। वर्ष 1956 में डॉ. आंबेडकर के साथ रहकर दादासाहेब गायकवाड को भी नागपुर में बौद्ध धर्म में दीक्षित किया गया था।

समाज सुधार कार्य – दादा साहेब गायकवाड़ शोषित समाज के लोगों के न्याय संगत अधिकारों के लिए उनके संघर्ष में बाबा साहेब आंबेडकर का समर्थन करने के लिए आगे आने वाले पहले शोषित युवाओं में से एक थे। 20 मार्च 1927 को महाड में चावदार झील का सत्याग्रह और 2 मार्च 1930 को नासिक में कालाराम मंदिर प्रवेश का सत्याग्रह आदि में उन्होंने आंबेडकर के साथ भाग लिया था। दादा साहेब गायकवाड ने शोषितों को एक जूट करने की पहल की थी और शेषित समुदाय में जागरूकता पैदा करने के लिए कड़ी मेहनत की थी। दादा साहेब गायकवाड़ ने कई पदों पर जिम्मेदारी सम्भाली थी। गायकवाड ज्ञान विज्ञान केन्द्र नासिक के अध्यक्ष रहे और प्रबुद्ध भारत के सम्पादकीय बोर्ड के अध्यक्ष भी रहे। वह एक ट्रस्टी और मुम्बई के अनुसूचित जाति सुधार ट्रस्ट के सदस्य थे।

दादा साहेब गायकवाड़ 1942 से 1946 तक सरकारी सेवा में थे। 1947 में उन्होंने जालंधर और कुरूक्षेत्र में शरणार्थियों के लिए एक विशेष अधिकारी के रूप में काम किया। दादा साहेब ने अखण्ड महाराष्ट्र के गठन के आंदोलन में हिस्सा लिया था। दादा साहेब गायकवाड़ की एक और उपलब्धि है उन्होंने भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के लिए भी काम किया। ग्रामीण महाराष्ट्र में भूमिहीन

खेतिहर मजदूरों की संख्या बहुत अधिक है। जमींदारों द्वारा उनका जमकर शोषण किया जा रहा था। इसलिए दादा साहेब गायकवाड ने मांग की, कि भूमिहीन खेतीहर मजदूरों को उनके काम का उचित परिश्रमिक मिलना चाहिए और सरकार उनके शोषण को रोकने के लिए कानूनी प्रावधान करें व सरकार उन्हें अपनी थोडी जमीन दे। जब रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया का गठन किया गया था, तब उसका नेतृत्व गायकवाड जी ने ही किया था। पार्टी विभाजन के समय एकता बनाने के लिए उन्होंने कड़ी मेहनत की थी। उन्हें मुम्बई राज्य विधान सभा का सदस्य चुना गया और बाद में लोकसभा के सदस्य रहकर भी कार्य करते रहे। दादा साहेब गायकवाड की मृत्यु 29 दिसम्बर 1971 को हुई थी।

29. महानायक जयपाल मुंडा (3 जनवरी 1903 – 20 मार्च 1970)

जीवन परिचय – जयपाल सिंह मुंडा का जन्म आदिवासी परिवार में 3 जनवरी 1903 को बिहार में रांची के खूटी उपखण्ड के पहन टोली, गांव तकरा हटुदामी में हुआ था। गांव में प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा के बाद उन्हें सेंट पॉल चर्च स्कूल में पढ़ाई के लिए लाया गया। वह एक प्रतिभाशाली फील्ड हॉकी खिलाडी और एक शानदार होशियार छात्र थे। उच्च शिक्षा की पढ़ाई के लिए उन्होंने इंग्लैंड की ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र ऑनर्स में स्नातक किया। जयपाल मुंडा को भारतीय सिविल सेवा के लिए भी चुन लिया गया था, परन्तु कुछ दिन बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया। वर्ष 1934 में वे घाना में प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज में शिक्षक बने। वर्ष 1937 में वे भारत लौट आये और यहाँ राजकुमार कॉलेज रायपुर के प्रधानाचार्य बने। जयपाल मुंडा यहाँ कलकत्ता के मोहन बागान क्लब से जुड़े और अपनी हॉकी की टीम की शुरूआत की। उन्होंने विभिन्न टूर्नामेंटों में अपनी टीमों का नेतृत्व भी किया।

उपलब्धियाँ – जयपाल मुडा 1938 में आदिवासी महासभा के अध्यक्ष बने। 1940 में कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन में उन्होंने सुभाष चन्द्र बोस के साथ अलग झारखंड राज्य बनाने की आवश्यकता पर चर्चा की थी। इसके बाद जयपाल मुंडा आदिवासियों के अधिकारों की आवाज बन गये। उनके जीवन में एक समय ऐसा आया जब उन्होंने संविधान सभा में बेहद बेबाकि से देश के आदिवासियों के बारे में सकारात्मक ढंग से अपनी बात को रखा। 1946 में जयपाल मुंडा खूंटी ग्रामीण क्षेत्र से कांग्रेस के पूरनोचन्द मित्र को हरा कर संविधान सभा के सदस्य बने। आजादी के चार महिने बाद 1 जनवरी 1948 को खरसावां गोलीकांड हुआ। उस समय जयपाल मुंडा को खरसावां के हाट में एक सभा को सम्बोधित करना था,

उन्हें सुनने और देखने के लिए हजारों आदिवासी दूर-दूर से आये थे। परन्तु किसी कारण वश जयपाल मुंडा उसमें नहीं आ पाए। इधर उड़िसा पुलिस ने उपस्थित भीड़ पर अंधाधुंध फायरिंग कर दी जिसमें हजारों लोग हताहत हुए थे। आज भी यहाँ इस दिन 1 जनवरी को काला दिवस के रूप मे मनाया जाता है।

जिस महानायक ने झारखंड राज्य की परिकल्पना, झारखंडी संस्कृति अस्मिता एवं पहचान के लिए पूरे जीवन संघर्ष किया और आदिवासियों के इतिहास, दर्शन, व राजनीति को प्रभावित किया, वह महान योद्धा अद्वितीय है। जाति व्यवस्था पर उन्होंने कहा कि हम आदिवासी है, फिर हमें अनुसूचित जन जाति शब्द क्यों दिया गया। हम लोग बोल चाल में एवं अन्य कई जगहों में आदिवासी शब्द का ही प्रयोग करते हैं, न कि अनुसूचित जनजाति का करते हैं। 20 मार्च सन् 1970 को दिल्ली में उनके निवास पर उन्हें सेरेब्रल हैमरेज हो गया था, जिसके कारण उनका निधन हो गया।

30. शहीद भगत सिंह (28 सितम्बर 1907 – 23 मार्च 1931)

प्रारम्भिक जीवन – भगत सिंह का जन्म 28 सितम्बर 1907 को पंजाब के लायलपुर जिले के बंगा गांव में एक सिख परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सरदार किशन सिंह और माता का नाम विद्यावती कौर था। यह एक किसान परिवार से थे। भगत सिंह के पिता और उनके चाचा अजीत सिंह प्रगतिशील राजनीति में सक्रिय थे। अमृतसर में 13 अप्रैल 1919 को हुए जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड ने भगत सिंह की सोच पर गहरा प्रभाव डाला था। भगत सिंह ने लाहौर के नेशनल कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर भारत की आजादी के लिए ''नौजवान भारत सभा'' की स्थापना की थी।

गतिविधियाँ – वर्ष 1922 में चौरी-चौरा हत्याकांड के बाद गाँधी ने जब किसानों का साथ नहीं दिया तब भगत सिंह बहुत निराश हुए थे। उसके बाद उनका अहिंसा से विश्वास कमजोर हो गया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सशस्त्र क्रांति ही हमें स्वतन्त्रता दिला सकती है। उसके बाद वे चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में गठित हुई गदर दल के हिस्सा बन गये। काकोरी काण्ड में रामप्रसाद बिस्मिल सहित 4 क्रांतिकारियों को फाँसी व 16 लोगों को कारावास की सजा से भगत सिंह इतने विचलित हुए कि उन्होंने चन्द्रशेखर के साथ उनकी पार्टी हिन्दुस्तान रिपब्लिकन ऐसोसिएशन से जुड़ गए। इस संगठन का उद्देश्य सेवा, त्याग और पीड़ा झेल सकने वाले नवयुवकों को तैयार करना था। भगत सिंह ने राजगुरू के साथ मिलकर 17 दिसम्बर 1928 को लाहौर के सहायक पुलिस

अधिक्षक रहे अंग्रेज अधिकारी जे.पी. सांडर्स को मारा था। इन दोनों की चन्द्रशेखर आजाद ने पूरी सहायता की थी। भगत सिंह ने क्रांतिकारी साथी बटुकेश्वर दत्त के साथ मिलकर ब्रिटिश भारत की सेण्ट्रल एसेम्बली में बम और पर्चे फेंके थे। बम फेंकने के बाद वहीं पर दोनों ने अपनी गिरफ्तारी दे दी थी। जेल में भगत सिंह करीब दो साल तक रहे। इस दौरान वे लेख लिखकर अपने क्रांतिकारी विचारों को व्यक्त करते रहे। उस दौरान जेल में रहते हुए उनके द्वारा लिखे गए लेख व परिवार के लिखे गये पत्र आज भी उनके विचारों के दर्पण हैं। अपने लेखों में उन्होंने कई तरह से पूंजीपतियों को अपना शत्रु बताया है। उन्होंने लिखा कि मजदूरों का शोषण करने वाला भले ही एक भारतीय हो पर वह उनका शत्रु है। उन्होंने जेल में अंग्रेजी में एक लेख भी लिखा जिसका शीर्षक ''मैं नास्तिक क्यों हूँ?'' जेल में रह कर भगत सिंह ने अपने साथियों के साथ 64 दिनों तक भूख हड़ताल की थी। उनके एक साथी यतीन्द्रनाथ दास ने तो भूख हड़ताल में अपने प्राण ही त्याग दिए थे।

फांसी की सजा – भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव पर मुकदमा चलाया गया। जिसके बाद उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई। जज द्वारा सजा सुनाते समय कोर्ट में तीनों इंकलाब जिन्दाबाद का नारा लगाते रहे। भगत सिंह ने जेल में रहकर बहुत यातनाएं सहन की। उस समय भारतीय कैदियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था और उन्हें न अच्छा खाना दिया जाता था। कैदियों की स्थिति को सुधारने के लिए भगत सिंह ने जेल के अन्दर भी आन्दोलनों शुरू कर दिया। उन्होंने अपनी मांग पूरी करवाने के लिए कई दिनों तक ना पानी पिया और ना अन्न का दाना ग्रहण किया। अंग्रेज पुलिस उन्हें बहुत मारा करती थी, तरह-तरह की यातनाएं देती थी। जिससे परेशान होकर भगत सिंह हार जाएँ, लेकिन उन्होंने अंत तक हार नहीं मानी। 23 मार्च 1931 को भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को फांसी दे दी गई। इनकी फांसी की तारीख 24 मार्च थी, इन लोगों की रिहाई के लिए पूरे देश में प्रदर्शन हो रहे थे। जिसके चलते ब्रिटिश सरकार को डर था कि कहीं फैंसला बदल न जाये। इसलिए उन लोगों ने इन तीनों को 23 व 24 की मध्यरात्रि में ही फांसी दे दी और अंतिम संस्कार भी कर दिया।

31. पेरियार ललई सिंह यादव (1 सितम्बर 1911 – 7 फरवरी 1993)

जीवन परिचय – ललई सिंह यादव का जन्म 1 सितम्बर 1911 को कानपुर देहात के गांव कठारा के किसान परिवार में हुआ। पिता का नाम गज्जू सिंह यादव और माता का नाम मूला देवी था। इनके पिता आर्य समाजी थे। ललई सिंह के जुझारूपन के पीछे उनके माता-पिता के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा

था। ललई सिंह की प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ही हुई थी, उन दिनों पिछड़ों और शोषितों मे शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने लगी थी। ऐसे चुनौतीपूर्ण समय में ललई सिंह ने 1928 में आठवीं की परीक्षा पास कर ली थी। उसी दौरान उन्होंने फारेस्ट गार्ड की भर्ती में हिस्सा लिया और उसमें चुन लिए गए। वर्ष 1931 में 20 वर्ष की अवस्था में उनका विवाह सरदार सिंह की बेटी दुलारी देवी से हुआ। फारेस्ट गार्ड की नौकरी छोड़कर 1933 में वे सशस्त्र पुलिस कम्पनी में कनिष्ठ लिपिक बनकर भिंड मुरैना में चले गए। नौकरी के साथ-साथ वे पढ़ाई भी करते रहे। 1946 में पुलिस एण्ड आर्मी संघ ग्वालियर कायम करके उसके अध्यक्ष चुने गये। 29 मार्च 1947 को ललई यादव को पुलिस व आर्मी में हड़ताल कराने के आरोप में धारा 131 भारतीय दण्ड विधान के अन्तर्गत उनके साथियों के साथ राजबन्दी बनाया गया। 6 नवम्बर 1947 को स्पेशल, क्रिमिनल सेशन जज ग्वालियर ने पांच साल सश्रम कारावास और पाँच रूपये अर्थ दण्ड का सर्वाधिक दण्ड इनको ग्वालियर नेशनल आर्मी के अध्यक्ष हाई कमाण्डर होने के कारण दी। फिर 12 जनवरी 1948 को सिविल साथियों के साथ वो बाहर आए।

धर्म ग्रन्थों का अध्ययन और विरोध – ललई सिंह यादव ने हिन्दू धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करना आरम्भ किया। इसी दौरान उन्होंने एक के बाद एक श्रुति, स्मृति, पुराण और विविध रामायणें भी पढ़ी। हिन्दू शास्त्रों में व्याप्त घोर अंध विश्वास, पाखण्ड और विश्वासघात से वो बहुत विचलित हुए। धर्म ग्रंथों में ब्राह्मणों की महिमा का बखान और पिछड़े शोषित समाज की मानसिक दासता के षडयंत्र से वो व्यथित हो उठे। ऐसी स्थिति में इन्होंने धर्म छोड़ने का मन भी बना लिया। दुनिया के विभिन्न धर्मों का अध्ययन करने के बाद और वैचारिक चेतना बढ़ने के कारण वे बौद्ध धर्म की ओर प्रवृत्त हुए।

उनका कहना था कि सामाजिक विषमता का मूल कारण वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, श्रुति स्मृति पुराण आदि ग्रंथ ही हैं। इस सामाजिक विषमता का विनाश सामाजिक सुधार से नहीं अपितु इस व्यवस्था से अलगाव में ही समाहित है। साहित्य प्रकाशन की ओर इन्होंने बहुत ध्यान दिया। दक्षिण भारत के महान क्रांतिकारी पेरियार ई.वी. रामास्वामी नायकर ने उस समय उत्तर भारत के कई दौरे किये थे, उसी समय ललई सिंह यादव भी उनके सम्पर्क में आये थे। पेरियार रामास्वामी नायकर के सम्पर्क के बाद ललई सिंह यादव ने उनकी लिखित ''रामायण ए ट्रू रीडिंग'' में विशेष रूचि दिखाई। पढ़कर इस किताब का खूब प्रचार-प्रसार किया।

पेरियार रामास्वामी नायकर की अनमुति के बाद ललई सिंह यादव ने 1 जुलाई 1969 को इस किताब ''सच्ची रामायण'' को हिन्दी में छपवा दिया। इसके प्रकाशन से उत्तर पूर्व और पश्चिम भारत में तहलका सा मच गया। यू.पी.

सरकार ने 8 दिसम्बर 1969 को इस किताब को जब्त करने के आदेश दे दिये। इस आदेश के खिलाफ प्रकाशक ललई सिंह यादव ने इलाहाबाद हाई कोर्ट में याचिका दायर की। तीन दिन सुनवाई के बाद ''सच्ची रामायण'' किताब के जब्त होने के आदेश को हाईकोर्ट ने खारिज कर दिया। सच्ची रामायण के पक्ष में मुकदमा जीतने के बाद वह शोषितों के नायक बन गये। उन्होंने वर्ष 1967 में हिन्दू धर्म का त्याग कर बौद्ध धर्म अपना लिया और अपने नाम से यादव शब्द हटा दिया। इसके पीछे उनकी गहरी जाति विरोधी चेतना थी, जिसका मकसद जाति विहीन समाज के लिए संघर्ष था। एक सामाजिक कार्यकर्ता, लेखक और प्रकाशक के रूप में उन्होंने अपना पूरा जीवन ब्राह्मणवाद के खात्मे और बहुजनों की मुक्ति के लिए समर्पित कर दिया। 7 फरवरी 1993 को उन्होंने जीवन से अंतिम विदा ली।

32. बाबू जगदेव प्रसाद कुशवाहा (2 फरवरी 1922 – 5 सितम्बर 1974)

जीवन परिचय – बाबू जगदेव प्रसाद का जन्म 2 फरवरी 1922 को बिहार में जहानाबाद के कुरहारी ग्राम में कोइरी (दांगी-कुशवाहा) परिवार में हुआ। इनके पिता प्रयाग नारायण पास के ही प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक थे तथा माता रासकली अनपढ़ गृहणी थीं। अपने पिता के मार्गदर्शन से बाबू जगदेव ने मिडिल की परीक्षा पासकर ली थी। हाई स्कूल की पढ़ाई करने के लिए जहानाबाद चले गये। उसके बाद उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा अर्थात् स्नातक तथा स्नातोत्तर की पढ़ाई पूरी की। वहाँ पढ़ाई के दौरान उनकी मुलाकात चन्द्रदेव प्रसाद वर्मा से हुई। चन्द्रदेव जी ने उन्हें महामानवों के विचारों को पढ़ने के लिए प्रेरित किया। महामानवों के विचारों से प्रभावित होकर बाबू जगदेव प्रसाद राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लग गये और इस दौरान वे सबसे पहले सोशलिस्ट पार्टी से जुड गए। इस पार्टी के दैनिक मुखपत्र ''जनता'' का सम्पादन भी किया। इसमें उन्होंने पिछड़ों-शोषितों की समस्याओं के बारे में खूब लिखा तथा उनके समाधान के बारे में भी अपनी कलम चलायी। 1955 में उन्होंने हैदराबाद जाकर अंग्रेजी साप्ताहिक ''सिटिजेन'' तथा हिन्दी साप्ताहिक ''उदय'' का सम्पादन भी आरम्भ किया।

वर्ष 1946 में बाबू जगदेव प्रसाद जब घर से बाहर पढ़ाई करने गये हुए थे, उसी दौरान में उनके पिता बिमार पड़ गये और उनकी माँ ने सभी देवी-देवताओं से उनकी स्वस्थ होने की प्रार्थना की लेकिन वे फिर भी ठीक नहीं हुए और आखिरकार उनकी मृत्यु हो गयी। पिता की मृत्यु और माँ की लाचारी देखकर

जगदेव बाबू बहुत दुखी हुए। यहीं से उनके मन में हिन्दू धर्म के प्रति विद्रोह और नफरत की भावना पैदा हो गयी। लोगों का कहना है कि उन्होंने घर के सभी देवी–देवताओं की मूर्तियों और तस्वीरों को उठाकर पिता की अर्थी पर डाल दिया और उन्हें भी पिता की चिता के साथ जला दिया। उन्होंने अपने पिता की मृत्यु के बाद कोई भी श्राद या कर्मकांड नहीं किया। बस एक शोक सभा और सामूहिक भोज का ही कार्यक्रम रखा।

सामाजिक तथा राजनीतिक कार्य – बाबू जगदेव प्रसाद ने पत्रकारिता और अपने सिद्धातों से कभी समझौता नहीं किया। इसी कारण उन्होंने सम्पादक पद से त्याग पत्र दे दिया और पटना वापिस लौट आये। पटना आकर जगदेव प्रसाद समाजवादियों के साथ आंदोलन में शामिल हो गये। उस समय बिहार में समाजवादी आन्दोलन जोरों पर था। जे. पी. और लोहिया अपने–अपने तरीके से आंदोलन में सक्रिय थे। ऐसे मौके पर जगदेव प्रसाद ने लोहिया का साथ देकर सोशलिस्ट पार्टी के संगठनात्मक ढांचे को मजबूत किया। इन्होंने मिलकर समाजवादी विचारधारा का देशीकरण करके इसको लोगों के घर–घर तक पहुँचाया। उधर जे.पी. मुख्य धारा की राजनीति से हटकर विनोवा भावे द्वारा संचालित भूदान आंदोलन में शामिल हो गये। इस आन्दोलन के द्वारा अगड़ी जातियों के समाजवादियों के हित साधक को ही सामने रखा गया। अतः भूदान आंदोलन से गरीबों का कोई भला नहीं हुआ। बल्कि उनका जमकर और शोषण ही हुआ।

1967 में जगदेव बाबू ने संसोपा उम्मीदवार के रूप में कुर्था में जोरदार जीत दर्ज की। उनकी और कर्पूरी ठाकुर की अच्छी सूझबूझ की वजह से पहली बार बिहार मे गैर कांग्रेस सरकार का गठन किया गया। संसोपा पार्टी की नीतियों को लेकर जगदेव बाबू की लोहिया से अन बन हो गई। स्थिति को देखकर उन्होंने पार्टी छोड़ दी। 25 अगस्त 1967 को उन्होंने शोषित दल नाम से नयी पार्टी बनाई। जगदेव बाबू के पार्टी के नारों से लोगों में एक नया जोश उत्पन्न होता था। बिहार की जनता इन्हें बिहार के ''लेनिन'' के नाम से बुलाने लगी। भ्रष्ट प्रशासन तथा जातिवादी मानसिकता से ग्रस्त सरकार के खिलाफ जगदेव बाबू ने राज्य व्यापी सत्याग्रह शुरू करने की योजना बनायी। 5 सितम्बर 1974 को जगदेव बाबू हजारों की संख्या में शोषित समाज का नेतृत्व करते हुए, अपने दल में काला झंडा लेकर आगे बढ़ने लगे। उस समय कुर्था में तैनात डी.एस.पी. ने सत्याग्रहियों को रोका तो जगदेव बाबू ने इसका प्रतिवाद किया और विरोधियों के पूर्व नियोजित जाल में फंस गये। सत्याग्रहियों पर पुलिस ने हमला बोल दिया और उनके ऊपर गोली चला दी। गोली बाबू जगदेव की गर्दन में लगी, पुलिस ने

उनको घायलावस्था में ही घसीटते हुए पुलिस स्टेशन ले गयी। वहाँ उनको बन्दूक की बट से पीटा गया, पानी पीने को भी नहीं दिया गया। इस अमानवीय कृत्य के कारण जगदेव बाबू ने थाने में ही अपनी अंतिम सांस ली। पुलिस प्रशासन ने उनके मृत शरीर को गायब करना चाहा परन्तु भारी जन दबाव के कारण ऐसा नहीं कर पाए। उनके शव को 6 सितम्बर को पटना लाया गया और उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया।

33. साहेब कांशीराम (15 मार्च 1934 – 9 अक्टूबर 2006)

प्रारम्भिक जीवन – कांशीराम का जन्म 15 मार्च सन् 1934 को पंजाब के रोपड़ जिले में रैदासी सिख परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सरदार हरि सिंह था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव खवासपुर में हुई और स्नातक की पढ़ाई रोपड़ से पूरी की। 1957 में उन्होंने भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग में नौकरी की, लेकिन बाद में इस्तीफा देकर पुणे में अनुसंधान रक्षा लेबोरेटरी में कार्य किया। 1964 में वह महाराष्ट्र में आर.पी.आई. के साथ जुडे। इसी दौरान उन्होंने बाबा साहेब आंबेडकर की दो पुस्तकें पढ़ी, जो जाति व्यवस्था समाप्त करने तथा अस्पृश्य लोगों के लिए गांधी जी और कांग्रेस के कार्यों से सम्बंधित थी। इनसे प्रेरणा लेकर इन्होंने भी ''चमचा युग'' एक पुस्तक लिखी। उसी दौरान दीना भाना ने बाबा साहेब द्वारा लिखित पुस्तक एनिहिलेशन ऑफ कास्ट (जाति का विनाश) कांशीराम को दी, जिसे पढ़कर काशी राम ने कहा था इस पुस्तक ने मुझे जीवन भर का काम दे दिया है। दिसम्बर 1978 में उन्होंने बैकवर्ड एंड माइनरिटीज कम्यूनिटीज एम्प्लाइज फेडरेशन का गठन किया जिसे बामसेफ के नाम से जाना जाता है। इसके बाद कांशीराम जी ने 6 दिसम्बर 1981 को एक और संगठन दलित शोषित समाज संघर्ष समिति (डी.एस.4) की स्थापना की थी। बामसेफ के द्वारा ही 14 अप्रैल 1984 में बसपा (बहुजन समाज पार्टी) का जन्म हुआ।

कांशीराम का जीवन त्याग और निष्ठा से भरा हुआ था। उन्होंने सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति को अपने जीवन के लक्ष्य में निर्धारित किया। इनकी प्राप्ति के लिए अपने आपको पूरी तरह समर्पित कर दिया। जब उनकी मां ने उन्हें शादी करने के लिए कहा तो कांशी राम ने माँ को समझाया कि उन्होंने समाज की भलाई के लिए खुद को समर्पित कर दिया गया है। जब उन्होंने नौकरी छोड़ी तो अपने परिवार को 24 पन्ने का एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने बताया कि अब वे सन्यास ले रहे हैं और परिवार के साथ उनका कोई रिश्ता नहीं है। वे अब परिवार के किसी भी आयोजन में नहीं आ पाएंगे। उन्होंने यह भी बताया कि वे पूरे जीवन शादी नहीं करेंगे

और उनका पूरा जीवन बहुजन समाज के उत्थान को समर्पित है।

राजनीतिक जीवन – वर्ष 1965 में कांशीराम ने डॉ. आंबेडकर के जन्मदिन पर सार्वजनिक अवकाश रद्द किये जाने के विरोध में संघर्ष किया। इसके बाद उन्होंने पीड़ितों और शोषितों के हक के लिए लड़ाई लड़ने का संकल्प ले लिया। उन्होंने जातिवादी प्रथा और आंबेडकर के कार्यों का गहन अध्ययन किया और शोषित समाज के उत्थान के काफी प्रयास किए। इन्होंने सबसे पहले एक संस्थागत कार्यालय सन् 1976 में दिल्ली में शुरू किया। इस संस्था का उद्देश्य इस वाक्य में निहित था– ''एडयूकेट ऑर्गनाइज एंड एजिटेट''। इस संस्था ने आंबेडकर के विचारों और उनकी मान्यताओं को लोगों तक पहुंचाने का बुनियादी कार्य किया। इसके पश्चात कांशीराम ने अपना प्रसार तंत्र मजबूत किया और लोगों को जाति प्रथा क्यों और आंबेडकर के विचारों के बारे में जागरूक किया। वे जहाँ–जहाँ जाते अपनी बातों का प्रचार करते थे, इससे उन्हें बड़ी संख्या में लोगों का समर्थन प्राप्त होता था। वर्ष 1984 में इन्होंने दलित शोषित समाज संघर्ष समिति की स्थापना की थी। इस समिति की स्थापना उन कार्यकर्ताओं के बचाव के लिए बनाई गई थी जिन पर जाति प्रथा के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए हमले होते थे। यह संस्था पंजीकृत नहीं थी किन्तु एक राजनैतिक संगठन था। 1984 में कांशीराम ने ''बहुजन समाज पार्टी'' के नाम से राजनीतिक दल का गठन किया। उन्होंने उस समय कहा था कि अब वे बहुजन समाज पार्टी के अलावा किसी और संस्था के लिए काम नहीं करेंगे, अतः उन्होंने अपने आपको सामाजिक कार्यकर्ता से एक राजनेता के रूप में परिवर्तित किया। काशीराम पार्टी की बैठक में, अपने भाषणों में कहा करते थे– अगर सरकारें कुछ करने का वादा करती है, तो उसे पूरा भी करना चाहिए। 1991 में पहली बार यू.पी. के इटावा से लोकसभा का चुनाव जीता। 1996 में दूसरी बार लोकसभा का चुनाव पंजाब के होशियार पुर से जीते। वर्ष 2001 में सार्वजनिक तौर पर घोषणा करके मायावती को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

काशीराम को उच्च रक्तचाप और शूगर जैसी सामान्य बिमारी थी। 1994 में उन्हें दिल का दौरा पड़ने के बाद दिमाग की नस में खून के थक्के जम गये। फिर 2003 में उन्हें दिमाग दौरा पड़ा। बाद में सेहत खराब रहने पर वे सामाजिक राजनैतिक जीवन से बिल्कुल अलग हो गये। 9 अक्टूबर 2006 में दिल का दौरा पड़ने से उनकी मृत्यु हो गयी।

34. रामदयाल मुंडा (23 अगस्त 1939 – 30 सितम्बर 2011)

प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा – राम दयाल मुंडा का जन्म झारखण्ड के रांची जिले के आदिवासी गाँव दिउड़ी में 23 अगस्त 1939 को हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अमलेसा लूथरन मिशन स्कूल तमाड़ में हुई थी। उन्होंने अपनी माध्यमिक शिक्षा खूंटी हाईस्कूल से और रांची विश्वविद्यालय से मानव विज्ञान में स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूरी की थी। इसके बाद उच्च शिक्षा और शोध करने के लिए अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय से भाषा विज्ञान में पी.एच.डी. की। फिर वहीं से उन्होंने दक्षिण एशियाई भाषा एवं संस्कृति विभाग में शोध और अध्ययन किया। शोध और अध्ययन के बाद अमेरिका के मिनिसोटा विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। 1982 में रांची लौटने के बाद यहाँ रांची विश्वविद्यालय में आदिवासी और क्षेत्रीय भाषा विभाग की स्थापना कराई।

योगदान – राम दयाल मुंडा वर्ष 1980 के दशक में अमेरिका से प्रोफेसर की नौकरी छोड़कर रांची चले आये और यहाँ के शोषित, दबे कुचले और आदिवासी समाज की आवाज बन गये। उनका झारखंड की संस्कृति और कला से बेहद लगाव था। जन जातीय भाषा के विकास के लिए वह हमेशा लड़ाई लडते रहे। राम दयाल मुंडा आदिवासियों के स्वतंत्र पहचान के पक्षधर थे और इसके लिए वे धर्म को सबसे महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने आदिवासियों के पारम्परिक धर्म को ''आदि धर्म'' के रूप में खड़ा किया वे मानते थे कि आदिवासियों का जो धर्म है वह अन्य सभी धर्मों इस्लाम, हिन्दू और ईसाई धर्म से अलग है। उन्होंने धर्म पर ''आदिधर्म'' नामक पुस्तक भी लिखी। आदिवासी आन्दोलन और झारखंड आन्दोलन पर उन्होंने नागपुरी, मुंडारी, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में 10 से अधिक पुस्तके तथा 50 से ज्यादा निबन्ध लिखकर प्रकाशित कराए। इसके अतिरिक्त हिन्दी, संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी में भी कई पुस्तकों का अनुवाद व सम्पादन किया है। आदिवासियों के अधिकारों के लिए उन्होंने हमेशा से शिक्षा को सर्वोपरि माना। विश्व आदिवासी दिवस प्रतिवर्ष 9 अगस्त को मनाया जाता है। इसमें उनका बड़ा योगदान रहा था। आदिवासियों के हितों के लिए वे हमेशा कार्य करते रहें। राम दयाल मुंडा के अथक प्रयासों से छोटा नागपुर में खादी ग्राम उद्योग संस्थान की स्थापना हुई, तो इन्हें उसका अध्यक्ष पद सम्भालने का मौका मिला। ये आजीवन खादी ग्रामोद्योग संस्थान के अध्यक्ष रहे। इन्होंने अपने जीवन में आदिवासी महिलाओं की शिक्षा पर और उनके जीवन कार्य पर काफी काम किया। रामदयाल मुंडा की मृत्यु का कारण कैंसर था। 30 सितम्बर 2011 को रांची के अपोलो अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गयी।

35. संत बसवेश्वर (ई. स. 1105 – ई. स. 1167)

परिचय – 12वीं शताब्दी में कर्नाटक में संत महात्मा बसवेश्वर हुए, जो एक क्रांतिकारी विचारों वाले संत, कवि एवं समाज सुधारक के रूप में विख्यात हुए। इनका जन्म ईसवी सन् 1105 में अक्षय तृतीया के दिन कर्नाटक राज्य में बीजापुर जिले में बागेवाड़ी गांव में हुआ था। बसवेश्वर के पिता मादिराज गांव के मुख्य अग्रहार प्राप्तकर्ता थे। बसवेश्वर की माता का नाम मादलांबा था। संत बसवेश्वर ने आध्यात्मिक चिंतन को महत्वपूर्ण माना है। इन्होंने समाज में परिवर्तन लाने के लिए ''वीर शैव पंथ'' की स्थापना की। संत बसवेश्वर ने अपने वचनों के माध्यम से सभी जाति–धर्म के लोगों को एकत्रित करके मानवीय मूल्यों का प्रसार किया। सामाजिक कुरीतियों की तीखी आलोचना की। उस समय समाज में मूर्ति पूजा प्रचलित थी। मूर्ति पूजा के बहाने हिंसात्मक कृत्य फैले हुए थे। गरीब, भूखे लोगों को खाने के लिए अन्न नहीं रहता था, लेकिन अज्ञानी लोग पत्थर पर दूध चढ़ाकर उसकी पूजा करते थे। ऐसे संदर्भ में बसवेश्वर ने जनता में जागृति पैदा करने के लिए वचनों का सहारा लिया।

सुधार कार्य – संत बसवेश्वर का मानना था कि भगवान तो सर्वव्यापी है। उसको मंदिर बनाकर उसमें कैद करने की क्या आवश्यकता है। समाज में सम्पन्न व्यक्ति जब मंदिर बनाकर अपने पाप का प्रायश्चित करते, तो ऐसे लोगों की निन्दा करते हुए बसवेश्वर ने कहा– कि जो लक्ष्मी (धन) के पुत्र हैं वे सम्पति से मंदिरों का निर्माण करेंगे। लेकिन मैं गरीब हूँ मेरे पास उतनी सम्पति नहीं है। इसलिए मेरे पैर ही खम्भे हैं, शरीर ही मंदिर है और सिर ही सोने का कलश है। यह कहकर धार्मिक मित्यांडबरों का खण्डन किया। बसवेश्वर उसी धर्म को श्रेष्ठ मानते थे जो मानव को मानव बनाये, मानव जाति का उद्धार करे, उसे सत्य के मार्ग पर चलने की शिक्षा प्रदान करे। धर्म, भक्ति में कुलीनता का वे विरोध करते थे। उन्होंने अपने वचनों द्वारा लोगों में प्रसारित किया कि सभी धर्मों का मूल दया पर आधारित है। ऐसा कौन सा धर्म है जिसमें दया नहीं है। अपने युग में प्रचलित जाति, वर्ण व्यवस्था के प्रति बसवेश्वर के मन में क्रोध था। उन्होंने उसे दूर करने का संकल्प लिया था। समाज में समानता की स्थापना हेतु उन्होंने निम्न स्तर की लड़की का उच्च स्तर के लड़के के साथ विवाह कराए। सम्प्रदायवादियों ने इसका प्रबल विरोध किया, लेकिन बसवेश्वर को इसकी चिंता नहीं थी। वे निडर होकर अपने समाज सुधारक कार्य करते रहे। संत बसवेश्वर का निधन ईसवी स. 1167 को हुआ था।

36. संत नरहरि सोनार (शक. स. 1115 – शक. स. 1207)

जीवन परिचय – संत नरहरि सोनार 13वीं शताब्दी के कवि और संत थे। संत नरहरि सोनार का जन्म शक. सं 1115 में देवगिरी में हुआ था। नर हरि सोनार शैव सम्प्रदाय से थे। इनके नाम से बहुत कम अभंग उपलब्ध है। इन्होंने अभंग नामक मराठी भक्ति कविता की रचना की। संत नरहरि पंढरपुर में रहते थे, जहाँ विठोबा का मुख्य मंदिर है। विठोबा भगवान विष्णु का एक रूप है। संत नरहरि सोनार ने वहाँ मल्लिकार्जुन मंदिर (शिव मंदिर) में पूजा की। उन्हें कट्टरपंथी के रूप में देखा जाता है, उन्होंने केवल एक भगवान शिव की ही पूजा की, विठोबा की नहीं।

स्मरण – एक व्यापारी ने मंदिर में जाकर विठोबा के सामने मन्नत मांगी, यदि मुझे एक पुत्र का आशीर्वाद मिला तो मैं देवता को कमरबंद चढ़ाऊँगा। मन्नत पूरी होने के बाद व्यापारी ने पंढरपुर के सुनार नरहरि से विठोबा के लिए कमरबंद बनाने के लिए कहा, नरहरि इस शर्त पर कमर बंद बनाने के लिए तैयार हो गये कि वे मंदिर में प्रवेश नहीं करेंगे। व्यापारी ही विठोबा की पत्थर की मूर्ति का माप लाकर देंगे। उन्होंने व्यापारी द्वारा लाए गए माप के अनुसार सोने और जवाहरात का कमर बंद तैयार कर दिया। व्यापारी ने जब विठोबा को कमरबन्द बांधा तो वह बहुत तंग था, फिर नरहरि ने बड़ा करके व्यापारी को कमरबन्द दे दिया। अब कमरबन्द बहुत ढीला था। व्यापारी ने नरहरि को मंदिर में आकर ठीक करने को कहा, नरहरि अड़े रहे में एक देवता शिव के अलावा दूसरे देवता को नहीं देखूंगा। व्यापारी ने सुझाव दिया आपको वहाँ आंखों पर पट्टी बांध कर लेकर चलते थे। सड़क पर जाते समय कुछ लोगों ने नरहरि की आंखों पर पट्टी का मजाक उड़ाया। मंदिर पहुँच कर जब नरहरि ने विठोबा की छवि को छुआ तो उन्हें वह शिव की प्रतिमा ही लगी, और आंखों से पट्टी खोली तो देखा वह विठोबा है। अविश्वास में उसने फिर से अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली और फिर छवि को छुआ तो फिर से उन्हें वह विठोबा को नहीं बल्कि शिव की एक छवि का छू रहा है। उन्होंने महसूस किया कि शिव और विठोबा एक ही है। इस प्रकार नरहरि विठोबा के भी भक्त बन गये। संत नरहरि सोनार कट्टर शैव होते हुए भी विठोबा के भक्त बनने के लिए वारकरी संत ज्ञानेश्वर और अन्य लोगों से प्रभावित हो गये थे। शक. स. 1207 में उनकी मृत्यु हो गई।

37. संत सेन महाराज नाई (वि.सं. 1357 – वि. सं. 1440)

जीवन परिचय – संत सेन महाराज का जन्म विक्रम संवत 1357 में वैशाख कृष्ण द्वादशी को हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीचंद और माता का नाम सुशीला कांता था। इनका विवाह विजय नगर, मध्य प्रदेश के राजवैद्य शिवैया की पुत्री गजरा देवी से हुआ था। इनके पुत्र का नाम भद्रसेन था। सेन महाराज ने स्वामी रामानन्द जी से दीक्षा ली थी। उसके बाद इन्होंने सत्संग और प्रवचन के माध्यम से भक्ति ज्ञान, वैराग्य संत सेवा की शिक्षा का प्रचार–प्रसार करते रहे।

संत सेन महाराज नाई थे, वे वीर सिंह राजा के पास काम करते थे, उनका काम राजा की मालिश करना, बाल और नाखून काटना था। उसी दौरान वहां पर भक्तों की एक मंडली भी होती थी, जिसमें सेन महाराज भी शामिल हो गये, और भक्ति में लीन रहने लगे।

उपदेश एवं धार्मिक यात्राएं – संत सेन महाराज बचपन से ही विनम्र दयालु और ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखते थे। इन्होंने गृहस्थ जीवन के साथ–साथ भक्ति के मार्ग पर चलकर भारतीय संस्कृति के अनुरूप लोगों को शिक्षा और उपदेश के माध्यम एक रूपता प्रदान की। देश में इनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली हो गया कि लोग स्वयं ही इनकी ओर खिंचे चले आते थे। जब संत सेन महाराज वृद्ध हुए तो ये काशी में कुटिया बनाकर रहने लगे और वहीं उपदेश देने लगे। संत सेन महाराज काशी में संत रविदास से भी मिले। इन्होंने काशी में ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ करके यह सिद्ध कर दिया कि कोई भी मनुष्य जाति के आधार पर छोटा–बड़ा नहीं होता क्योंकि भगवान ने सबको बराबर बनाया है। ये जातियाँ तो कर्म के अनुसार मनुष्यों की देन है। उन्होंने जाति व धर्म से ऊपर उठ कर कार्य किए और सच्ची मानवता का संदेश दिया। संत महाराज ने समाज में फैली कुप्रथाओं की आलोचना करते हुए और उन्हें दोष पूर्ण बताकर समाज सुधार के लिए हर सम्भव प्रयास करते रहे। संत सेन महाराज ने सम्पूर्ण जाति को ब्रह्म ज्योति का स्वरूप बताया तथा मानवता के प्रति सेवा भाव, दया, प्रेम और भक्ति की भावना से ईश्वर को पाने का संदेश दिया। सेन सागर ग्रंथ के अनुसार संत सेन महाराज माघ मास की एकादशी विक्रम संवत 1440 को मोक्ष को प्राप्त हुए।

38. संत सावता माली (ई. स. 1250 – ई. सं 1295)

प्रारम्भिक जीवन – संत सावता माली का जन्म महाराष्ट्र के अरण मेंड गांव में ई.स. 1250 में हुआ था। उनके पिता 'पूरसोबा' तथा माता ''वृति'' धार्मिक थे। पूरसोबा खेती के व्यवसाय के साथ ही भजन–पूजन भी करते थे। एक धार्मिक परिवार मे पल बढ़े सावता ने पास के गाँव की जनाबाई धार्मिक हिन्दू से शादी की। सावता माली विठोबा (विट्ठल) की महिमा के भजन गाते थे। उनका मानना था कि विठोबा उनके पास आये थे क्योंकि सावता माली विठोबा के मंदिर की तीर्थ यात्रा करने में असमर्थ थे। उन्होंने एक बार अपनी पत्नी को नाराज कर दिया और जब उन्होंने अपनी ससुराल वालों को नजर अंदाज कर दिया क्योंकि वह भक्ति में बहुत व्यस्त थे। लेकिन जनाबाई का गुस्सा सावता के दयालु और शांति पूर्ण शब्दों के कारण तेजी से शांत हो गया था।

भक्ति भावना – संत सावता माली ने आध्यात्म तथा भक्ति का आत्मबोध तथा लोक संग्रह का कर्तव्य तथा सदाचार का आपस में सम्बंध जोडा। उनका ऐसा विचार था कि ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए जप तप की आवश्कता नहीं व कहीं दूर तीर्थयात्रा पर जाने की आवश्यकता नहीं, केवल अन्तःकरण से ईश्वर का चिन्तन करने से तथा श्रद्धा से ही ईश्वर प्रसन्न होते है। सावता माली ने ईश्वर के नाम जप पर अधिक बल दिया। उन्होंने लोगों को बताया कर्म करते रहना यही सच्ची ईश्वर सेवा है। वे वारकरी सम्प्रदाय के ज्येष्ठ संत के रूप में प्रसिद्ध थे। सावता माली के 25 अभंग उपलब्ध है। उनके अभंग नवरस में वत्सल, करूण, शातन और दस्य भक्ति पाई जाती है। सातोब का अभंग रचना अच्छा माना जाता है। इनकी मृत्यु ई.स. 1295 में हुई। उनको समर्पित एक मंदिर ''अरन'' में बनाया गया है।

39. संत गोरा कुम्हार (ई. स. 1267 – ई. स. 1317)

जीवन परिचय – संत गोरा कुम्हार का जन्म महाराष्ट्र राज्य के उस्मानाबाद जिले में गाँव सत्यपुरी में ईसवी सम्बत 1267 में हुआ था। वे भक्ति कालीन कवियों में प्रमुख स्थान रखते थे। इनकी पत्नी का नाम तुलसीबाई और पुत्र का नाम हरि था। मिट्टी से बर्तन बनाने का इनका आजीविका का मुख्य साधन था। मिट्टी के बर्तन एवं खिलौने बनाकर उन्हें बाजार में बेचा करते थे। संत गोरा कुम्हार के आराध्य देव विट्ठल और पाण्डुरंग थे। आप मिट्टी का कार्य करते हुए हर समय भगवान विट्ठल और पांडुरंग के भजन गाते रहते थे।

भजन भक्ति – एक दिन दोपहर में तुलसीबाई अपने तीन वर्ष के पुत्र हरि को लेकर आंगन में बैठी थी। पास में ही संत गोरा (गौराबा) बर्तन के लिए मिट्टी तैयार कर रहा था। तुलसी बाई हरि को खेलता हुआ जानकर घर का कार्य करने के लिए चली गयी। अचानक बादल और बारिश जैसा मौसम हो गया। बादलों की गड़गड़ाहट सुनकर हरि डर कर अपने पिता के पास जाकर बोलने लगा कि मुझे डर लग रहा है। लेकिन संत गौरा (गौराबा) अपने आराध्य की भक्ति में भजन गाते हुए मिट्टी को पैरों से गूंथ रहे थे। गौराबा को यह भी ध्यान नहीं रहा कब उनका पुत्र हरि उनके पास आया और कब उनके पैरों के तले मिटटी के साथ दब गया। तभी वहाँ तुलसीबाई आ गयी और हरि को आवाज लगाने लगी। जब हरि वहाँ नही मिला, तब तुलसीबाई ने गौराबा से पूछा कि हरि कहाँ है, गौराबा ने कहा उन्होंने हरि को नहीं देखा। तभी तुलसीबाई को हरि के पैर गुंथी मिट्टी से बाहर निकलता हुआ दिखाई दिया। यह देखकर तुलसीबाई ने अपने पुत्र को मिटटी से बाहर निकाला। तब तक हरि की मृत्यु हो चुकी थी। अनजाने में हुए इस कृत्य का पश्चाताप करने के लिए गौराबा ने अपने दोनों हाथ को तोड डाला।

कुछ दिनों बाद आषाढ़ एकादशी ज्ञानेश्वर जी और नामदेव जी की संत मंडली पंढरपुर जाने के लिए निकली। ज्ञानेश्वर जी ने गोरा कुम्हार और उसकी पत्नी को भी पंढरपुर में अपने साथ लेकर गए। वहाँ गरूड परम्परा के अनुसार नामदेव जी ने कीर्तन किया जिसे ज्ञानेश्वर जी समेत सर्व संत मंडली कीर्तन सुनने बैठी। कीर्तन के समय लोग हाथ ऊपर उठाकर तालियां बजाने लगे और विट्ठल नाम का जयकार करने लगे। जब गौरा कुम्हार ने अपने लूले हाथ ऊपर किये तो देखा उनके लूले हाथ ठीक हो गये। यह देखकर संत मंडली हर्षित हुई। सर्व लोगों ने पांडुरंग का जयघोष किया। संत गौरा कुम्हार ने ई.स. 1317 में समाधि प्राप्त की और अमर हो गये।

40. संत नामदेव (26 अक्टूबर 1270 – 3 जुलाई 1350)

जीवन परिचय – नामदेव महाराज का जन्म 26 अक्टूबर 1270 में महाराष्ट्र के सतारा जिले में नरसीबामणी गांव में एक शिंप्पी (दर्जी) परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम दामाशेट और माता का नाम गोणाई देवी था। इनके पिता भगवान विट्ठल के भक्त थे। नामदेव का विवाह राधाबाई के साथ हुआ था और इनके पुत्र का नाम नारायण था। नामदेव के गुरु विसोबा खेचर थे। गुरुग्रंथ और कबीर के भजनों में इनके नाम का उल्लेख मिलता है। नामदेव का महाराष्ट्र में वही स्थान है, जो कबीरदास और सूरदास का उत्तरी भारत में है। उनका सम्पूर्ण जीवन मानव कल्याण के लिए समर्पित रहा। संत नामदेव ने संत ज्ञानेवश्वर के

साथ पूरे महाराष्ट्र का भ्रमण किया और अनेक भक्ति गीत रचे। इन्होंने मराठी के साथ–साथ हिन्दी में भी रचनाएं लिखीं।

साहित्य और दर्शन – महाराष्ट्र में नामदेव नामक पाँच संत हुए है उन सबने थोड़ी बहुत अभंग और पद रचना की है। सकल संत गाथा मे नामदेव महाराज के 2500 अभंग मिलते हैं। गुरु ग्रंथ साहिब में नामदेव के 61 पद संग्रहीत हैं। नामदेव महाराज ने जो वाणी उच्चारण किये हैं वह सब गुरू ग्रंथ साहिब में भी मिलती है, उनमें से बहुत सारी वाणी दक्षिण और महाराष्ट्र में गाई जाती है। नामदेव ने भक्ति गीतों की परम्परा को प्रेरणा दी, जो महाराष्ट्र में चार सदी तक जारी रही। संत नामदेव का ज्यादातर प्रभाव संत तुकाराम पर पड़ा। पंढरपुर के मंदिर में संत नामदेव को एक विशेष दर्जा दिया जाता है। हर साल लाखों भक्त पंढरपुर आकर भगवान विट्ठल और संत नामदेव के दर्शन करते हैं।

संत नामदेव अपनी उच्चकोटि की आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए ही विख्यात हुए। वे चमत्करों के सर्वथा विरूद्ध रहे। वह मानते थे कि परम शक्ति की बनाई हुई इस भूमि तथा संसार की सेवा करना सच्ची पूजा है। इसी से साधक भक्त को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। संत नामदेव 80 वर्ष की आयु में इस संसार में गोविंद के नाम पर जाप करते–करते 3 जुलाई 1350 ई. को स्वयं भी इस भवसागर से पार चले गये।

41. संत तुकाराम महाराज (सन् 1598 – सन् 1650)

प्रारम्भिक जीवन – संत तुकाराम महाराज का जन्म महाराष्ट्र के पुणे जिले के अर्न्तगत देहू नामक गांव में 1598 में हुआ था। इनके परिवार के लोग विट्ठल के उपासक थे। इनके परिवार के सभी लोग पंढरपुर नियमित रूप से जाते रहते थे। इनका बचपन माता कनकाई और पिता बहेबा की देख–रेख में अत्यंत दुलार से बीता। किन्तु इनके 18 वर्ष के होने पर इनके माता–पिता का स्वर्गवास हो गया था। उनका परिवार कुनबी समाज से था। तुकाराम के परिवार में खुदरा बिक्री और पैसे उधार पर देने का व्यवसाय था। उनके पिता विठोबा के भक्त थे। विठोबा को हिन्दू धर्म में भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है। भीषण अकाल के कारण इनकी प्रथम पत्नी व छोटे बालक की भूख के कारण तड़फते हुए मृत्यु हो गयी थी। संत तुकाराम का मन प्रपंचो से उब गया। ये सांसारिक सुखों से विरक्त हो गये। चित्त को शांति मिले इस विचार से तुकाराम रोज गांव के निकट पहाड़ी पर जाते और भगवान विट्ठल के नामस्मरण में दिन व्यतीत करने लगे। उनकी दूसरी पत्नी जीजाबाई को अपने पति संत तुकाराम की इस साधु प्रवृत्ति के कारण काफी कुछ सहना पड़ा।

उनका चमत्कारी जीवन – संत तुकाराम ने जब ईश्वर के भजन कीर्तन के साथ–साथ मराठी में अभंगों की रचना की, तो उनके अभंगों की पोथी को देख कर सवर्ण ब्राह्मणों ने उनकी यह कहकर निन्दा की, कि तुम्हें निम्न जाति (शुद्र) का होने के कारण यह सब अधिकार नहीं है। यहाँ तक कि रामेश्वर भट्ट नामक एक ब्राह्मण ने उनकी सभी पोथियों को इन्द्रायणी नदी में बहा आने के लिए कहा। साधु प्रवृत्ति के तुकाराम ने सभी पोथियां नदी में प्रवाहित कर दी। कुछ समय बाद तुकाराम को पश्चाताप हुआ और वह विट्ठल मन्दिर के सामने बैठकर रोने लगे तेरह चौदह दिन बाद उन्हें सोते समय विट्ठल भगवान ने स्वपन में कहा, तुम्हारी पोथियां नदी के बाहर किनारे पर पड़ी हैं उन्हें सम्भाल लेना। सचमुच में ऐसा ही हुआ और पोथियां मिल गयी।

एक बार महाराज शिवाजी ने तुकाराम को सम्मानित करने के लिए अपार सम्पत्ति भेजी। संत प्रवृत्ति के तुकाराम महाराज ने वह सब सम्पत्ति लौटाते हुए कहा कि पांडुरंग के बिना हमें दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वापिस उनके साथ अपनी चौदह अभंगो की रचना भी भेजी। संत तुकाराम महाराज के साधुत्व एवं कवित्व की कीर्ति सर्वत्र फैल गई। वे तो दूसरों पर उपकार करने के लिए जीवित थे। तुकाराम की अधिकांश काव्य रचना केवल अभंग छंद में ही है। इनके द्वारा गाए गए लगभग 4600 से अधिक अभंग आज भी उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने रूपकात्मक रचनाएँ भी की है। उनके सभी रूपक काव्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

मूल शिक्षाएं – संत तुकराम महाराज ने इस बात पर बल दिया है कि सभी मनुष्य ईश्वर की संतान हैं और इस कारण सब समान हैं। संत तुकाराम द्वारा ''महाराष्ट्र धर्म'' का प्रचार हुआ जिसके सिद्धांत भक्ति आंदोलन से प्रभावित थे। महाराष्ट्र धर्म का तत्कालीन सामाजिक विचारधारा पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा फिर भी जाति और वर्ण व्यवस्था पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडा। महाराष्ट्र धर्म का उपयोग छत्रपति शिवाजी महाराज ने सभी वर्गों को एकसूत्र मे बांधने के लिए किया था। संत तुकाराम की मृत्यु 1650 में होने की बात कही गई है।

42. संत जगनाडे महाराज (सन् 1624 – सन् 1688)

जीवन चरित्र – संत जगनाडे महाराज का जन्म 8 दिसम्बर 1624 में चाकण गांव में हुआ था, जो महाराष्ट्र के पुणे जिले में आता है। उनके पिता का नाम विठोबा जगनाडे और माता का नाम मथुबाई था। इनका परिवार आध्यात्मिक और धार्मिक था। इनकी शिक्षा घर पर ही उनके पिता द्वारा दी गई। इनके पिता तेली समाज से थे जो चाकण के बाजार में तेल का व्यवसाय करते थे। 12 वर्ष आयु में इनका विवाह यमुनाबाई से हुआ था। विवाह के समय यमुनाबई 8 वर्ष की थी।

संतों का प्रभाव – एक दिन संत तुकाराम महाराज, संत जगनाडे के गांव आए और वहां आकर चक्रधर मंदिर में भजन गाया जिसे सुनकर जगनाडे संत तुकाराम से बहुत प्रभावित हुए। उसके बाद संत जगनाडे संत तुकाराम के शिष्य बन गये। अब संत तुकाराम जब कोई अभंग सुनाते तो संत जगनाडे उन्हें लिपिबद्ध कर लेते थे। सभी अंभंग रचनाओं को संत जगनाडे ने जन–जन तक पहुँचाया। ब्राह्मण वर्ग संत तुकाराम और संत जगनाडे से द्वेष रखता था और इनके भक्ति गीतों से भी द्वेष रखता था। संत जगनाडे महाराज की मृत्यु सन् 1688 में हुई थी।

43. ऊदा देवी पासी (30 जून 1830 – 16 नवम्बर 1857)

जीवन परिचय – ऊदा देवी पासी का जन्म लखनऊ के समीप स्थित उजिरावां गांव में पासी परिवार में हुआ था। उनकी जन्म तारीख के बारे में ज्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं है। फिर भी कुछ लोगों का कहना है कि उनका जन्म 30 जून 1830 को हुआ था। उनके पति का नाम मक्का पासी था। ऊदा देवी की शादी के बाद ससुराल में ''जगरानी'' नाम रख दिया गया था। उसी दौरान में लखनऊ के छठे नवाब वाजिद अली शाह ने बड़ी मात्रा में अपनी सेना में सैनिकों की भर्ती की, जिसमें लखनऊ के निम्न वर्ग के लोगों को भी भर्ती किया गया। ऊदा देवी के पति मक्का पासी भी सेना में भर्ती हो गये। वह काफी साहसी और पराक्रमी था। मक्का पासी को देश की आजादी के लिए नवाब अली के दस्ते में शामिल होता देख ऊदा देवी को भी प्रेरणा मिली और वह भी वाजिद अली शाह के महिला दस्ते में भर्ती हो गई।

आजादी के लिए योगदान – साल 1857 की क्रांति के समय पूरे भारत के लोग अंग्रेजी सरकार के खिलाफ विद्रोह पर उतर आये थे। 10 जून 1857 को अंग्रेजों ने अवध पर हमला कर दिया। लखनऊ के इस्माइलगंज में ब्रिटिश फौज से अहमद उल्लाह शाह के नेतृत्व में एक पलटन लड़ रही थी। इस पलटन मे मक्का पासी भी लड़ रहे था। यहाँ अंग्रेजों से लड़ते हुए वह वीरगति को प्राप्त हो गए। जब यह खबर ऊदा देवी तक पहुँची तो अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध लड़ने का उसका इरादा और भी मजबूत हो गया। महिला दस्ते में वह पहले ही शामिल थी। तभी बेगम हजरत महल की मदद से उन्होंने महिला लडाकों की एक अलग बटालियन तैयार की जिसमें अधिकतर निम्नवर्ग की ही महिलाएँ थी। इस बीच 16 नवम्बर 1857 को कैम्पबैल की अगवाई में ब्रिटिश सेना ने लखनऊ के सिकन्दर बाग में ठहरे हुए भारतीय सैनिकों पर हमला बोल दिया। ऐसे में पुरूषों की वेशभूषा पहने हुए ऊदा देवी और उसकी बटालियन ने ब्रिटिश सेना को

सिकन्दर बाग के द्वार पर ही रोक दिया।

16 नवम्बर 1857 को वहाँ लडाई के समय ऊदा देवी अपने साथ एक बन्दूक और कुछ गोला बारूद लेकर एक पीपल के पेड़ पर चढ़ गयी थी और अंग्रेजों पर गोली बरसाने लगी। इस तरह उन्होंने दो दर्जन से भी ज्यादा ब्रिटिश सैनिकों को मार गिराया। ऊदा देवी की वीरता देख शेष सैनिक भी अंग्रेजों पर टूट पडे। काफी देर तक अंग्रेजों को पता ही नही चला कि उन पर कहाँ से गोलियाँ चल रही हैं। तभी कैम्पबैल की दृष्टि उस पेड़ पर गयी जहाँ काले वस्त्रों में एक मानव आकृति फायरिंग कर रही थी। कैम्पबैल ने उस आकृति को निशाना बनाया अगले ही पल वह आकृति (ऊदा देवी) मृत होकर जमीन पर गिर पड़ी। उसके बाद जब ब्रिटिश अफसरों ने बाग में प्रवेश किया तो उन्हें पता चला कि पुरूष की वेश–भूषा में वीरगति प्राप्त वह भारतीय सैनिक कोई और नहीं बल्कि एक महिला थी। ऊदा देवी के शौर्य, साहस और शहादत पर भारतीय इतिहासकारों ने बहुत कम लिखा है जबकि अंग्रेज अधिकारियों और पत्रकारों ने काफी कुछ लिखा है।

44. मातादीन वाल्मीकि (..... – 8 अप्रैल 1857)

ऐतिहासिक परिचय – मातादीन वाल्मीकि एक भारतीय स्वतन्त्रता सेनानी थे जिन्होंने 1857 के भारतीय विद्रोह के फैलने से ठीक पहले की घटनाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मातादीन ब्रिटीश ईस्ट इंडिया कम्पनी की एक कार्ट्रिज निर्माण इकाई में काम करते थे। यह बैरकपुर छावनी कोलकत्ता से लगभग 16 किलोमीटर की दूरी पर स्थित थी। उस समय मृत जानवरों के चमड़े आदि के साथ काम करना निम्न जातियों का व्यवसाय माना जाता था। रूढ़िवादी उच्च जाति के हिन्दू उन्हें अशुद्ध मानते थे। एक दिन इस फैक्ट्री में कारतूस बनाने वाले मातादीन वाल्मीकि को प्यास लगी। तब उन्होंने मंगल पाण्डेय नामक सैनिक से पानी मांगा। मंगल पाण्डेय ने उच्च जाति का होने के कारण, मातादीन को नीची जाति का होने के कारण पानी पिलाने से इंकार कर दिया। इस बात से मातादीन नाराज हो गये और उन्होंने मंगल पाण्डेय से कहा कि तुम्हारा धर्म कैसा है जो एक प्यासे को पानी पिलाने की इजाजत नहीं देता, लेकिन गाय जिसे तुम मां मानते हो और सूअर जिससे मुसलमान नफरत करते हैं। उसी के चमड़े से बने कारतूस को तुम मुंह से खोलते हो, यह सुनकर मंगल पाण्डेय चकित रह गया। इसके बाद उन्होंने मातादीन को पानी पिलाया और इस बातचीत के बारे में उन्होंने बैरक के सभी लोगों को बताया। इस सच को जानने के बाद मुसलमान भी बौखला गये और मंगल पाण्डेय ने भी विद्रोह कर दिया।

विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेज अधिकारियों ने मंगलपाण्डे पर गोलियाँ चला दी, जवाब में मंगलपाण्डे ने भी बंदूक चला दी। उसी दौरान मंगलपाण्डे घायल हो गये। इस घटना के कारण सैनिकों में विद्रोह भड़क उठा। विद्रोह की इस चिन्गारी से एक महीने बाद ही 10 मई 1857 को बैरकपुर छावनी से और मेरठ की छावनी से सैनिकों ने बगावत कर दी, जो कि ज्वाला बनकर पूरे उत्तरी भारत में फैल गई। अंग्रेजों ने जो चार्जसीट बनाई उसमें सबसे ऊपर मातादीन वाल्मीकि का ही नाम था। इस तरह विद्रोह फैलाने के जुर्म में अंग्रेजो ने मातादीन को गिरफ्तार कर लिया था, जिसके बाद मातादीन को अंग्रेजों ने उस समय ही फांसी पर लटका दिया।

45. संत दुर्बलनाथ (1861 ई. – 1929 ई.)

प्रारम्भिक परिचय – संत दुर्बलनाथ उन्नीसवीं सदी के भारतीय संत थे, उनका जन्म राजस्थान के अलवर जिले के बिछगांव में हुआ था। दुर्बलनाथ जी खटीक समुदाय से माने जाते है।। अर्थात् वह एक निचली जाति के परिवार से थे और उस समय उनकी जाति के किसी भी संत आदि को ब्राह्मण, विद्वानों द्वारा वरियता नहीं दी जाती थी। इनकी माता का नाम रूपा देवी और पिता का नाम फट्टूराम था। दुर्बलनाथ के बचपन का नाम कल्याण था। जब ये गायों को चराने के लिए जंगल में ले जाते थे तो वहाँ योग मुद्रा में बैठकर भगवान का ध्यान करते थे। उन्हें उस समय संत ब्रह्मनाथ की संगति में रहना भी पंसद था। जो हर रोज रात तक सत्संग करते थे। जैसे वे और बड़े हुए उनकी रूचि अध्यात्म में होती गई। उनके माता–पिता उनकी ऐसी स्थिति को देखकर बहुत चिंतित थे इसलिए उन्होंने विरोध के बावजूद भी इनका विवाह कर दिया।

सामाजिक कार्य – दुर्बलनाथ (कल्याण) ने अपने आध्यात्मिक लक्ष्यों का पीछा करते हुए भी एक गृहस्थ के रूप में अपनी भूमिका अच्छी तरह से निभाई। बाद में कुछ वर्षों के वैवाहिक जीवन के बाद कल्याण ने सन्यासी बनने का निश्चय किया। उन्होंने एक महात्मा गरीब नाथ से दीक्षा प्राप्त की और अपना नाम कल्याण से बदलकर दुर्बलनाथ कर लिया। वह अपने प्रिय शिष्यों के साथ घने जंगल के एकांत में ध्यान किया करते थे। उन्होंने उत्तर भारत के कई शहरों जैसे दिल्ली, मेरठ, अम्बाला, जयपुर, अलवर और बांदीकुई में वेदांत दर्शन का प्रचार किया। उन्होंने वेदांत पर आधारित कविता अनुभव आत्म प्रकाश की रचना की थी। दुर्बलनाथ ने 1929 में बांदीकुई में अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

46. शिव दयाल सिंह चौरसिया (13 मार्च 1903 – 18 सितम्बर 1995)

जीवन परिचय – शिव दयाल सिंह चौरसिया का जन्म उत्तर प्रदेश लखनऊ के निकट ग्राम खरिका में 13.03.1903 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम पराग राम चौरसिया था। इनका सुनारी का अपना पैतृक व्यवसाय था। इनकी माता की मृत्यु इनके बचपन में ही हो गयी थी। वह पढ़ाई लिखाई में बहुत होशियार थे। इन्होंने विलयम मिशन हाई स्कूल से मैट्रिक और कैनिंग कॉलेज से बी. एस. सी. और एल.एल.बी. की डिग्री हासिल की थी। उनके बाद ये रजिस्टर्ड एडवोकेट हो गये। इनके परिवार में पत्नी रामप्यारी जिनके तीन लड़के और एक लड़की हुई। शिवदयाल चौरसिया का झुकाव शुरू से ही वंचित तबके को अधिकार दिलाने की ओर था। उन्होंने भीमराव आम्बेडकर द्वारा 1938 में आयोजित पहले डिप्रेस्ड क्लास कॉन्फ्रेंस में हिस्सा लिया और आम्बेडकर के साथ डिप्रेस्ड लीग में काम किया। उस दौरान शिवदयाल सिंह चौरसिया भन्दत बोधानन्द महास्थविर के साथ नागपुर में होने वाले डिप्रेस्ड क्लासेस के सम्मेलन में भाग लेने के लिए गए वहाँ उनकी मुलाकात डॉ. भीमराव आम्बेडकर से प्रथम बार हुई। वे डॉ. भीमराव आम्बेडकर से बहुत प्रभावित हुए और उनके साथ काम करने लगे।

सामाजिक कार्य में योगदान – वर्ष 1927 में शिवदयाल सिंह चौरसिया ने समस्त पिछड़े को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनैतिक रूप से जागरूक करने के लिए ''आदि हिन्दू सभा'' का गठन किया। बाद में जिसे वर्ष 1928 में डॉ. भीमराव आम्बेडकर से मिलने के बाद ''डिप्रेस्ड क्लासेस लीग'' में विलय कर दिया और 1928 से 1930 तक इसके प्रधान रहे। दिसम्बर 1928 में इन्होंने एक नौ रत्न कमेटी का गठन किया बाद में उसका नाम बदलकर ''मूल भारतवासी समाज'' रखा। वर्ष 1929 में इन्होंने ''बैकवर्ड क्लासेस लीग'' की स्थापना की और 8 दिसम्बर 1929 को लखनऊ में इसका अधिवेशन भी किया। वर्ष 1930 में इन्होंने वाराणसी में बाबा विश्वनाथ मंदिर में प्रवेश के लिए भी आन्दोलन चलाया। साइमन कमीशन के गठन की घोषणा के बाद स्वामी अछूतानंद ने उत्तर प्रदेश के कई शहरों में वंचितों के लिए बैठको का आयोजन किया। शिवदयाल सिंह चौरसिया और रामचरण ने भी आदि हिन्दू महासभा के नेता के रूप में साइमन कमीशन के समक्ष व्यापक प्रदर्शन किया और इन्होंने साइमन कमीशन के सामने वंचितो के अधिकारों की मांग रखी।

29 जनवरी 1953 को प्रथम राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया

गया। जिसका अध्यक्ष काका कालेलकर को बनाया गया था। चौरसिया को उसका सदस्य मनोनीत किया गया। पिछड़ी जातियों को एकजुट करने के लिए वह देश भर में घूमते रहते थे। जहाँ से भी बुलावा आता अपना काम छोड़कर वहाँ पहुँच जाते थे। इससे पिछड़ों में जागरूकता आई और आपसी भाई चारा बढ़ता गया।

शिवदयाल सिंह चौरसिया 3 अप्रैल 1974 से लेकर 2 अप्रैल 1980 तक कांग्रेस के सदस्य के रूप में राज्यसभा के सदस्य भी रहे। संसद में रहकर उन्होंने वंचित तबके के लिए आवाज उठाई। उनका गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता देना मुख्य लक्ष्य रहा। मुफ्त कानूनी सहायता के लिए उन्होंने उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति एच एन भगवती के साथ भी बैठके की। इनके प्रयासों के बाद ही अदालतों में निःशुल्क कानूनी सहायता का प्रचलन हुआ और संसद में कानून पारित करवाकर भारतीय संविधान में जुडवाकर इस व्यवस्था को संवैधानिक समर्थन दिलाया गया। शिव दयाल सिंह चौरसिया ने बामसेफ, डी. एस. 4 और बहुजन समाज पार्टी के संस्थापक काशीराम के साथ भी मिलकर काम किया। डी. के. खापर्डे, दीना भाना एवं काशीराम के साथ मिलकर उन्होंने एस सी, एस टी, ओबीसी और अल्पसंख्यकों को एकजूट किया। इन्होंने वंचित वर्ग की महिलाओं को अलग से प्रतिनिधित्व देने की मांग रखी। उनका कहना था कि ऊंची जाति की महिलाएं ज्यादा पढ़ी लिखी होती हैं अगर महिलाओं का प्रतिशत अलग से तय नहीं किया गया तो वंचित वर्ग की महिलाओं के हक का लाभ ऊंची जातियों की महिलाओं की ओर चला जाएगा। चौरसिया की मृत्यु 18.09. 1995 को हुई।

47. जोगेन्द्र नाथ मण्डल (29 जनवरी 1904 – 5 अक्टूबर 1968)

जीवन परिचय – जोगेन्द्र नाथ मण्डल का जन्म पूर्वी बंगाल (बांग्लादेश) के बरी साल जिले के मइसकड़ी में 29 जनवरी 1904 को हुआ था। वह पिछड़ी जाति से थे इनकी माता का नाम संध्या और पिता का नाम रामदयाल मंडल था। जोगेन्द्र नाथ मण्डल के 6 भाई बहन थे, ये सबसे छोटे थे। इन्होंने 1924 में इन्टर और 1929 में बी.ए. पास की थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इन्होंने पोस्ट ग्रेजुएशन की पढ़ाई पूरी की थी। सन् 1937 में इन्हें जिला काउन्सिल के लिए मनोनीत किया गया और बाद में बंगाल लेजिस्लेटिव काउन्सिल का सदस्य चुन

लिए गए। जोगेन्द्र मंडल ने 1937 से ही अपना राजनैतिक कैरियर शुरू किया। उन्होंने पूर्वी बंगाल से प्रांतीय विधान सभा चुनाव एक स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में लड़ा और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जिला समिति के अध्यक्ष सरकल कुमार दत्ता को पराजित किया। ये सुभाष चन्द्र बोस और शरद चन्द्र बोस से प्रभावित हुए थे। जब बोस को कांग्रेस से निष्कासित किया गया तो तब जोगेन्द्र नाथ मंडल मुस्लिम लीग से जुड गये। जोगिन्द्र नाथ मंडल ने डॉ. भीमराव आम्बेडकर के साथ मिलकर अनुसूचित जाति संघ को पूर्वी बंगाल में स्थापित किया। उस समय वहां पूर्वी बंगाल की राजनीति में बहुजन शोषितों और मुस्लिम समुदाय का बाहुल्य था।

राजनैतिक कैरियर – सन् 1946 में बंगाल दंगों के दौरान जोगेन्द्र नाथ मंडल ने बहुजन शोषित समुदाय के लोगों से कहा कि– वे किसी के भी खिलाफ दंगों का हिस्सा न बने। ऐसा कहने से वे जिन्ना के और करीब आ गये। इस बीच भारत विभाजन की बात चली, तब जिन्ना को ऐसे शख्स की जरूरत थी, जो पाकिस्तान में बहुसंख्यक मुसलमानों और अल्पसंख्यक हिन्दुओं के बीच सन्तुलन की लीडरसिप कर सके। ऐसे में जोगेन्द्र नाथ से बेहतर विकल्प नहीं था। इस तरह बंटवारे के बाद जोगेन्द्र नाथ मंडल पाकिस्तान चले गये। वहाँ वे पाकिस्तान के संविधान सभा के सदस्य और अस्थायी अध्यक्ष बने और नये देश के पहले कानून और श्रम मंत्री कि जिम्मेदारी उन्हें मिली। वहां वे कराची में रहने और कामकाज देखने लगे। पाकिस्तान में कुछ ही समय बाद उन्हें अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ हो रहा भेदभाव दिखा। इस तरह लगातार पाकिस्तान में खासकर हिन्दुओं के साथ हिंसा की खबरों से जोगेन्द्र नाथ मंडल परेशान रहने लगे। उन्होंने कई बार एक ताकतवर नेता लियाकत अली खान से इसे देखने का अनुरोध किया। आखिरकार बंटवारे के तीन ही सालों के भीतर साल 1950 में उन्होंने लियाकत सरकार से अपना इस्तीफा दे दिया और भारत लौट आए। उन्होंने इसके लिए पाकिस्तान प्रशासन के हिन्दू विरोधी पूर्वाग्रह का हवाला दिया था। उन्होंने अपने इस्तीफे में सामाजिक अन्याय और गैर मुस्लिम अल्प संख्यकों के प्रति पक्षपात पूर्ण व्यवहार से सम्बंधित घटनाओं का उल्लेख किया था। भारत लौटने के बाद वे यहां की राजनीति से दूरी बनाए रहे और उन्होंने बांग्ला देश से हिन्दू शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए अपना कार्य जारी रखा और तेजी से पश्चिमी बंगाल में हिन्दू शरणार्थियों को भरते रहे थे। कुछ वर्षों बाद 5 अक्टूबर 1968 को पश्चिमी बंगाल में उत्तरी 24 परगना के बोगांव में उन्होंने अंतिम सांस ली।

48. संत तुकडोजी महाराज (30 अप्रैल 1909 – 11 अक्टूबर 1968)

जीवन परिचय – संत तुकडोजी महाराज का जन्म 30 अप्रैल 1909 को महाराष्ट्र राज्य के अमरावती जनपद के यावली नाम गांव में एक गरीब परिवार में हुआ था। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा यावली और वरखेड में पूरी की। जीवन के प्रारम्भ से ही ये साधु–संतों के सम्पर्क में आ गये थे। एक संत समर्थ आडकोजी महाराज ने इनके ऊपर स्नेह वर्षा करते हुए योग शक्तियों से विभूषित किया। तुकडोजी महाराज का मूल नाम माणिक बंदोजी इंगले था। तुकडोजी महाराज मराठी और हिन्दी बोलते थे।

सामाजिक कार्य – संत तुकडोजी महाराज महाराष्ट्र के एक आधुनिक संत, कवि और समाज सुधारक रहे। उन्होंने अंध विश्वास और जातिगत भेदभाव को मिटाने के लिए भजन और कीर्तन का प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल किया। उन्होंने पूरे महाराष्ट्र में आध्यात्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय एकता का संदेश फैलाया। संत तुकडोजी महाराज ने समाज के हितों के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किये। साल 1941 में उन्होंने भारत छोड़ो आन्दोलन को एक नई दिशा दी उन्होंने उस समय ब्रिटिश शासन नीतियों का पूरजोर विरोध किया था। तब उनको साल 1942 में ब्रिटिश हुकूमत ने गिरफ्तार करके केन्द्रीय जेल में भेज दिया था। स्वतंत्रता के बाद संत तुकडोजी महाराज ने अपना ध्यान एक बार फिर ग्रामीण क्षेत्रों की और केन्द्रित किया और उन्होंने तब एक संस्था अखिल भारत श्री गुरुदेव सेवा मंडल की नींव रखी और सभी ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से जुड़े कार्यक्रमों की सूची तैयार करके उन क्षेत्रों में कार्य किया।

संत तुकडोजी महाराज ने साल 1955 में आचार्य विनोबा भावे के द्वारा देश में किये गए भूदान आन्दोलन में भी हिस्सा लिया था। साल 1955 में ही जापान में आयोजित हुए विश्व शांति सम्मेलन में भी शामिल हुए। उसी दौरान इन्होंने ''मेरियन जापान'' नामक पुस्तक की रचना भी की थी। उन्होंने नागपुर से 120 कि.मी. दूर मोझरी नामक गाँव में गुरूकुंज आश्रम की स्थापना की थी। जहाँ उनके अनुयाईयों के द्वारा उसे चलाया जाता था। आश्रम के प्रवेश द्वार पर उनके सिद्धांत अंकित थे। वहां लिखा था ''इस आश्रम और मंदिर का द्वार सबके लिए खुला है'' हर धर्म और पंथ के व्यक्ति का भी यहाँ स्वागत है'' देश और विदेश के हर व्यक्ति का भी यहाँ स्वागत है। जीवन के अंतिम समय तक संत तुकडोजी महाराज एक गम्भीर बिमारी कैंसर से पीड़ित हो गए। जीवन को बचाने के प्रयासों के बावजूद 11 अक्टूबर 1968 को उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया।

49. बाबू जगजीवन राम (5 अप्रैल 1908 – 6 जुलाई 1986)

जीवन परिचय – जगजीवन राम का जन्म बिहार में आरा के पास चंदवा में 5 अप्रैल 1908 को हुआ था। उनके पिता शोभी राम पेशावर में ब्रिटिश भारतीय सेना में तैनात थे। बाद में कुछ कारणों के चलते इन्होंने इस्तीफा दे दिया था फिर गांव में खेती की जमीन खरीद कर यहीं रहने लगे। जगजीवन राम के एक बड़ा भाई और तीन बहनें थी। इनकी माता का नाम वसंती देवी था। जगजीवन राम ने 1914 में एक स्थानीय स्कूल से पढ़ाई आरम्भ की। उन्होंने 1920 में आरा के अग्रवाल मिडिल स्कूल में अंग्रेजी के साथ अपनी पढ़ाई को आगे बढ़ाया। वर्ष 1922 में पढ़ाई के दौरान उन्हें पहली बार जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ा। जगजीवन राम ने अपनी मैट्रिक प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और 1927 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से अपनी इंटर सांइस की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने 1931 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी.एस. सी की डिग्री प्राप्त कर ली थी।

सामाजिक और राजनीतिक जीवन – जगजीवन राम ने कई क्षेत्रों में रविदास सम्मेलनों का आयोजन किया था और कलकत्ता के विभिन्न क्षेत्रों में गुरु रविदास जयंती मनाई थी। 1934 में उन्होंने कलकत्ता में अखिल भारतीय रविदास महासभा और अखिल भारतीय दलित वर्ग लीग की स्थापना की थी। जगजीवन राम ने स्वतंत्रता संग्राम में बहुत सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गांधी जी से प्रेरित होकर इन्होंने 10 दिसम्बर 1940 को गिरफ्तारी दी। अपनी रिहाई के बाद उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन और सत्याग्रह में अपने को पूर्ण रूप से स्थापित किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा शुरू किए गए भारत छोड़ो आन्दोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी के कारण इनको 19 अगस्त 1942 को फिर से गिरफ्तार किया गया था।

जगजीवन राम का पाँच दशकों से अधिक का लम्बा और प्रतिष्ठित राजनीतिक सफर रहा है। इन्होंने एक छात्र कार्यकर्ता और स्वतन्त्रता सेनानी के रूप में अपने सार्वजनिक जीवन की शुरूआत की थी। वह वर्ष 1936 में 28 साल की उम्र में बिहार विधान परिषद के मनोनीत सदस्य के रूप में विधायक बन गए। उन्हें 10 दिसम्बर 1936 को पूर्वी मध्य शाहाबद ग्रामीण निर्वाचन क्षेत्र से बिहार विधान सभा के लिए निर्विरोध निर्वाचित घोषित किया गया था। वहाँ जब 1937 में कांग्रेस की सरकार बनी तो जगजीवन राम को शिक्षा और विकास मंत्रालय में संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किया गया था। 1946 में जवाहर लाल नेहरू की अंतरिम सरकार में ये फिर से निर्विरोध चुने गए, वहाँ सरकार में श्रम मंत्री के रूप में शामिल किया गया। इसके बाद लगातार लगभग 30 सालों तक केन्द्रीय

मंत्रीमंडल के सदस्य और मंत्री बने रहे। जगजीवन राम ने 1937 से 1975 तक कांग्रेस में कई अहम दायित्वों का निर्वाह किया। वर्ष 1940 से 1977 तक वे ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे। जगजीवन राम नेहरू से लेकर मोरारजी देसाई की गठबन्धन सरकार तक मंत्री रहे। इस दौरान वे उप प्रधान मंत्री, रक्षामंत्री, कृषि मंत्री व सूचना प्रसारण मंत्री जैसे बडे पदों पर रहे। वर्ष 1971 में भारत पाकिस्तान युद्ध व बांग्लादेश के निर्माण के समय वे देश के रक्षा मंत्री थे। देश में जब हरित क्रांति आयी उस समय वह देश के कृषि मंत्री थे। 6 जुलाई 1986 में उनका देहान्त हो गया।

50. बी. पी. मंडल (25 अगस्त 1918 – 13 अप्रैल 1982)

जीवन परिचय – बी. पी. मण्डल का जन्म 25 अगस्त 1918 को बनारस में हुआ था। इनके पिता रास बिहारी मंडल जाने–माने अधिवक्ता और स्वतंत्रता सेनानी थे। इनकी माता सीतावती मंडल के ये सातवीं संतान थे। इनका बचपन बिहार राज्य के मधेपुरा के मुरहो गांव में बीता। ये बिहार की मुसहर जाति से सम्बंध रखते थे। मुसहर बिहार की वंचित जातियों में से एक है।

राजनैतिक जीवन – इन्होंने अपने गांव के ही एक सरकारी स्कूल से शिक्षा ग्रहण की, इसके बाद इन्होंने पटना जाकर कॉलेज से आगे की पढ़ाई पूरी की। पढ़ाई पूरी होने के बाद इन्होंने 1945 से 1951 तक जिला मजिस्ट्रेट के पद पर कार्य किया। बाद में नौकरी छोडकर इन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण कर ली और राजनीति में अपना कैरियर शुरू किया। आखिर में इन्होंने कांग्रेस छोड़ दी और जनता पार्टी में शामिल हो गये। बिहार की मधेपुरा से चुनाव लड़कर कई बार सांसद बने और वर्ष 1968 में बिहार के सातवें मुख्यमंत्री बने 1 जनवरी 1979 को प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई ने बी. पी मंडल को पिछड़े वर्ग आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया। इस आयोग द्वारा बनाई गई रिपोर्ट में कई सारी सिफारिशें की गई थी जिसमें से नौकरियों व शिक्षण संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्ग को आरक्षण देने की सिफारिश की गयी थी। वर्ष 1990 में तत्कालीन वी. पी सिंह सरकार के द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की अधि सूचना जारी की गयी, जिसको लेकर देश के कई सारे हिस्सों में विरोध भी हुआ था। बी. पी. मंडल (बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल) ने अपने जीवन की आखिरी सांस 13 अप्रैल 1982 में ली थी।

51. रामस्वरूप वर्मा (22 अगस्त 1923 – 19 अगस्त 1998)

जीवन परिचय – रामस्वरूप वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर देहात क्षेत्र के गाँव गौरीकरन में एक साधारण कुर्मी किसान परिवार में 22 अगस्त 1923 को हुआ था। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. और आगरा विश्वविद्यालय से एल.एल. बी की डीग्री प्राप्त की थी। जिस समय इन्होंने शिक्षा ग्रहण की, उस दौरान शूद्रो और महिलाओं के लिए शिक्षा ग्रहण करने के रास्ते अवरूद्ध थे। रामस्वरूप वर्मा ने फिर भी शिक्षा ग्रहण की। पढ़ाई पूरी करने के बाद उनके सामने आगे बढ़ने के लिए तीन विकल्प थे – प्रशासनिक सेवा में जाना, वकालत करना तथा राजनीति में जाकर बहुजन मूलनिवासियों व देश की सेवा करना। रामस्वरूप वर्मा ने आई.ए.एस की लिखित परीक्षा भी उत्तीण कर ली थी किन्तु साक्षात्कार से पहले ही वे निर्णय ले चुके थे कि प्रशासनिक सेवा में रह कर एक प्रशासक के रूप में उन्हें सीमाओं के भीतर रह कर काम करना पड़ सकता है। परन्तु वह एक स्वतन्त्र नागरिक के रूप में सामाजिक परिवर्तन के लिए काम करना चाहते थे। वह अपने समय के प्रमुख भारतीय लोकतांत्रिक समाजवादी नेताओं जैसे आचार्य नरेन्द्र देव और डा. राम मनोहर लोहिया के सम्पर्क में आये और वह समाजवादी संस्था के सदस्य बन गए।

सामाजिक और राजनीति कार्य – रामस्वरूप वर्मा में राजनैतिक चेतना की उत्पत्ति डॉ. आम्बेडकर के उस भाषण से हुई जिसे उन्होंने मद्रास के पार्क टाउन मैदान में 1944 में शेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन द्वारा आयोजित कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में दिया था। इस भाषण में डॉ. आम्बेडकर ने कहा था कि ''तुम अपनी दीवारों पर जाकर लिख दो कि तुम्हें कल का शासक बनना है। जिसे आते जाते समय तुम्हें हमेशा याद रहे।'' डा. आम्बेडकर के इन विचारों का रामस्वरूप वर्मा के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। रामस्वरूप वर्मा लिखते हैं कि ''सामाजिक जागरूकता सामाजिक परिवर्तन को ला सकती है और सामाजिक परिवर्तन राजनीतिक परिवर्तन को संचालित करता है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन के बिना यदि राजनीतिक परिवर्तन होता है तो वह लम्बे समय तक नहीं होगा।'' वे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के चारों क्षेत्रों में बदलाव (क्रांति) करने के पक्ष में थे। उन्होंने अर्जक संघ और शोषित समाज दल दोनों का लिखित सिद्धांत, नीति, विधान और कार्यक्रम पेश करके देश और समाज को नई दिशा दी। इसके अतिरिक्त उन पर डॉ. आम्बेडकर के उस भाषण का भी बहुत प्रभाव पड़ा जिसे उन्होंने 25 अप्रैल 1948 को बेगम हजरत महल पार्क में दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि जिस दिन अनुसूचित जाति,

अनुसूचित जन जाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लोग एक मंच पर होंगे उस दिन वे देश की सत्ता को पा सकेगें।

रामस्वरूप वर्मा ने अमानवीयता और शोषण पर आधारित व्यवस्था का पुरजोर विरोध किया। मानवतावादी मूल्यों को स्थापित करने के लिए तथा एस. सी, एस.टी और ओ.बी.सी के सामाजिक ध्रुवीकरण के लिए उन्होंने 1 जून 1968 को लखनऊ में अर्जक संघ नामक सामाजिक, सांस्कृतिक संगठन की स्थापना की थी। वे गौतम बुद्ध, रविदास, कबीरदास, जोतीराव फुले, छत्रपति शाहूजी महाराज और डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर से प्रभावित रहे। अर्जक संघ के विस्तार में बिहार के लेनिन जगदेव प्रसाद, चौधरी महाराज सिंह भारती, ललई सिंह यादव की भूमिका भी बहुत अहम रही। रामस्वरूप वर्मा लगभग 50 साल तक राजनीति में सक्रिय रहे। 1957 में वे सोशलिस्ट पार्टी से भोगनीपुर कानपुर विधान सभा के सदस्य के रूप में उत्तर प्रदेश से चुने गये। इस प्रकार 1999 तक ये लगभग छः बार शोषित समाज दल से विधान सभा के सदस्य चुने गये।

रामस्वरूप वर्मा का यह भी मानना था कि सामाजिक चेतना से ही सामाजिक परिवर्तन होगा। वह सामाजिक सुधार की जगह सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर थे। इन्होंने कभी भी सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया। उनकी दिलचस्पी राजनीति से अधिक सामाजिक परिवर्तन में थी। रामस्वरूप वर्मा ने अर्जक संघ के माध्यम से समाज में फैले अन्धविश्वास पर न सिर्फ हमला किया बल्कि उत्तरी भारत के साथ–साथ दक्षिणी भारत में सामाजिक न्याय के आन्दोलन का आह्वान किया। सामाजिक न्याय के आन्दोलन से जुड़े समाजवादी और अर्जक संघ के क्रांतिकारी कार्यों के वैचारिक लेख अर्जक साप्ताहिक में प्रकाशित हुए। 19 अगस्त 1998 को उनका परिनिर्वाण हो गया। किन्तु उनका यश आज भी उनकी साहित्य सम्पदा के रूप में हमारी बीच में जिन्दा है।

52. दीना भाना (28 फरवरी 1928 – 29 अगस्त 2006)

प्रारम्भिक जीवन – दीना भाना वाल्मीकि का राजस्थान के जयपुर में 28 फरवरी 1928 को जन्म हुआ। दीना भाना बामसेफ के संस्थापक सदस्यों में से एक है। इन्होंने बामसेफ के अध्यक्ष मान्यवर काशीराम को बाबा साहेब के विचारों से प्रेरित किया था। उसके बाद काशीराम साहब ने बाबा साहेब के विचारों को देश के हर क्षेत्र में फैलाया। दीना भाना पुणे की गोला बारूद की फैक्टरी में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी के रूप में कार्य करते थे।

सामाजिक कार्य – दीना भाना जिद्दी किस्म के व्यक्ति थे। बचपन में उनके पिताजी अपर जाति के लोगों के यहाँ भैंस का दूध निकालने जाते थे। इनके मन में भी भैंस पालने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने पिताजी से जिद्द करके एक भैंस खरीद ली लेकिन जातिवाद की वजह से भैंस दूसरे दिन ही बेचनी पड़ी। क्योंकि जिस अपर जाति के यहाँ दूध निकालने जाते थे। उससे यह सब देखा नहीं गया और उनके पिताजी को बुला कर कहा तुम छोटी जाति के हो हमारी बराबरी करोगें तुम लोग सुअर पालने वाले भैंस पालोगे यह भैंस अभी बेच दो उनके पिताजी ने अधिक दबाव के कारण भैंस बेच दी। यह बात दीना भाना के दिल में चुभ गयी। उसके बाद उन्होंने अपना घर छोड़ दिया और दिल्ली आ गये।

दीना भाना ने बाबा साहेब के भाषण सुने और उनके विचारों को जाना समझा। बाबा साहेब के निर्वाण के बाद वे पुणे आ गये और यहाँ गोला बारूद की फैक्टरी में सफाई कर्मचारी के रूप में सर्विस प्रारम्भ की, वहीं पर काशीराम पंजाब रोपड़ निवासी क्लास वन आफिसर थे। वहां आम्बेडकर जयंती की छुट्टी न होने की वजह से दीना भाना ने हंगामा कर दिया। जिसकी वहज से दीना भाना को नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया। इस बात पर काशीराम नजर रखे हुए थे उन्होंने दीनाभाना से पूछा कि यह बाबा साहेब कौन है जिसकी वजह से तेरी नौकरी चली गयी। दीना भाना और उसके साथी वहीं विभाग में कार्यरत डी. के. खापर्डे ने काशीराम जी को बाबा साहेब की ''जाति विच्छेद'' नामक पुस्तक दी। काशी राम ने वह पुस्तक कई बार पढ़ी और सुबह ही दीना भाना से मिलने पर बोले दीना तुम्हें छुट्टी भी और नौकरी भी दिलाऊंगा। कुछ दिनों बाद काशीराम ने नौकरी छोड़कर बाबा साहेब के मिशन को ''बामसेफ'' संगठन बनाकर पूरे देश में फैलाया उसके संस्थापक सदस्य दीना भाना भी थे। इस महापुरूष का पुणे में 29 अगस्त 2006 को परिनिर्वाण हो गया।

53. डी.के. खापर्डे (13 मई 1939 – 29 फरवरी 2000)

जीवन परिचय – यशकाई डी. के. खापर्डे का जन्म 13 मई 1939 को महाराष्ट्र के नागपुर में हुआ था। डी. के खापर्डे बामसेफ संगठन के संस्थापको में से एक हैं। उनकी पूरी शिक्षा नागपुर में ही हुई थी। पढ़ाई पूरी होने के बाद उन्होंने डिफेन्स में नौकरी ज्वाइन कर ली थी। नौकरी के समय में ही दीना भाना और कांशीराम उनके सम्पर्क में आये। इन्होंने कांशीराम जी को डॉ0 आंबेडकर और उनके आन्दोलन के बारे में विस्तृत रूप में बताया था और बाबा साहेब द्वारा लिखी प्रसिद्ध पुस्तक ''जाति भेद का उच्छेद'' पढ़ने के लिए दी थी।

इन तीनों महापुरूषों ने समाज के अन्य प्रमुख साथियों के साथ मिलकर विचार किया कि अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जन जातियों और अन्य पिछड़ा वर्ग के लोग और अल्पसंख्यक समाज का अखिल भारतीय स्तर पर एक ''थिंक टेंक'' होना चाहिए जिसमें इस समाज के नौकरी पेशा कर्मचारी और अधिकारी हों और वे लम्बी प्लानिंग के साथ मूल निवासी बहुजन समाज के हितों को ध्यान में रखते हुए ''फुले आम्बेडकरी विचार धारा'' के अंतर्गत सामाजिक चेतना का काम करे।

सामाजिक कार्य – डी. के. खापर्डे और उनके साथियों की सोच थी कि पहले सामाजिक संगठन और सामाजिक आन्दोलन को सशक्त बनाया जाये। जबकि मान्यवर काशीराम का सोचना था कि पहले राजनीति को महत्व दिया जाये क्योंकि राजनीतिक सत्ता ही समस्त सामाजिक प्रगति की कुंजी है। इसके बाद मान्यवर काशीराम जहाँ आजीवन राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रहें। वहीं खापर्डे साहब अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक सामाजिक आन्दोलन को स्थापित करने और उसे मजबूत करने के प्रति आजीवन समर्पित रहे । यधपि राजनीतिक आन्दोलन और सामाजिक आन्दोलन, दोनों का ही उद्देश्य व्यवस्था परिवर्तन है। डी. के. खापर्डे सामाजिक आन्दोलन के लिए बाबा साहेब के एक कथन से बहुत प्रभावित हुए थे। बाबा साहेब ने उस कथन द्वारा कहा था कि राजनैतिक अत्याचार, सामाजिक अत्याचार की तुलना में कुछ भी नहीं है और एक समाज सुधारक जब सामाजिक अत्याचार को चुनौती देता है तो वह राजनीतिक अत्याचार करने वाली सरकार को चुनौती देने वाले राजनीतिज्ञ से कहीं अधिक साहसी होता है।

सामाजिक जड़ों को मजबूत करने के लिए वर्ष 1973 को पुणे में और वर्ष 1978 को दिल्ली में बामसेफ की अवधारणा को मूर्त रूप दिया गया। बामसेफ का उद्देश्य इसके द्वारा समाज के दिमाग तक पहुँचना और उन्हें गाइड करना मुख्य था। डी. के. खापर्डे ने 1987 में अपने समान विचारधाराओं के लोगों के साथ व्यवस्था परिवर्तन के उद्देश्य को लेकर स्वतंत्र रूप से बामसेफ को चलाने की योजना बनायी। उन्होंने डिफेन्स की नौकरी छोड़ कर अपना पूरा समय संगठन को दिया और देश के कौने-कौने में कैडर कैम्प आयोजित किये। उन्होंने संगठन के लिए काम करने वाले कार्यकर्ताओं का एक बड़ा नेटवर्क तैयार किया। बामसेफ ने फुले, आम्बेडकर की विचार धारा को आगे बढ़ाया। बामसेफ ने ओर कई उल्लेखनीय कार्य किये जिनमें खास कर नौकरी पेशा एस सी, एस टी, ओ बी सी और इनसे धर्मातंरित अल्पसंख्यक वर्ग के कर्मचारी और अधिकारियों

को पे बैक टू सोसाईटी के लिए मंच दिया। डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर ने इन नौकरी पेशा लोगों से जो अपेक्षा की थी, उस अपेक्षा पर यह संगठन काम कर रहा है। इसके लिए डी. के खापर्डे का योगदान सराहनीय है जो लोगों को सदा याद रहेगा।

वर्ष 1996 में बामसेफ के 13वें राष्ट्रीय अधिवेशन में बोलते हुए बताया कि– ''व्यवस्था परिवर्तन क्या है? उन्होंने कहा व्यवस्था परिवर्तन का मतलब देश की सत्ता और संरचना में परिवर्तन होना। यदि सत्ता संरचना का स्वरूप नहीं बदल रहा है तो इसके लिए जरूरी है सामाजिक परिवर्तन, उसके बाद राजनीतिक परिवर्तन और अंत में व्यवस्था परिवर्तन होगा। यही व्यवस्था परिवर्तन क्रम है।

आज राजनीतिक सत्ता में बड़े पैमाने पर ओबीसी के लोग आये है किन्तु फिर भी व्यंवस्था परिवर्तन नहीं हो रहा है क्योंकि इस राजनीतिक सत्ता का प्रयोग व्यवस्था बदलने के लिए नहीं बल्कि उसे कायम रखने के लिए किया जा रहा है। डी. के. खापर्डे का कहना है कि विचार परिवर्तन हुए बिना आचरण में परिवर्तन सम्भव नहीं है। यदि विचार परिवर्तन नहीं होता है तो हमारा वह आदमी ''पोजीसन आफ पावर'' तक पहुँचने के बाद भी पुराने एजेन्डो को ही आगे बढ़ाने में लगा रहता है। वर्ष 1999 में पटना बिहार में बामसेफ के 16 वें राष्ट्रीय सम्मेलन होने के बाद खापर्डे को पेट के कैंसर का पता चला था। उसके कुछ दिनों बाद 29 फरवरी 2000 को पुणे में डी. के. खापर्डे का परिनिर्वाण हो गया।

सबका मंगल हो।